

"ब्रह्म सोम प्रसाद"

स्वामी ब्रह्मानन्द

विषय सूची

———

यजुर्वेद ॐ ऋग्वेद

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

"ब्रह्म सोम प्रसाद"

प्रस्तुत पुस्तक शुभ स्थान आर्य समाज मन्दिर लोअर बाजार शिमला तिथि आषाढ़ शुक्ल ५ तदनुसार २४ जून संवत् २०१२ प्रातः समय लिखनी आरम्भ की ।

लेखक—

श्री पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

प्रकाशक—

श्रीमती उत्तमी बाई जी

आश्विन संवत् २०१२

पहली बार १०००

सामवेद अथर्ववेद

प्रकाशक—
श्रीमती उत्तमी बाई जी

प्रथम वार १०००

मुद्रक—
श्री सुरेन्द्र कुमार कपूर
पंचनद प्रैस लिमिटिड अमृतसर

आवश्यक सूचना

यह पुस्तक कुछ प्रेमी सज्जनों की श्रद्धा भावना से की गई सेवा से प्रकाशित हुई है यद्यपि उनकी इच्छा नहीं कि उन का नाम लिखा जाए और होना भी ऐसा चाहिये, परन्तु लौकिक विचार से उन की सद्भावना को प्रकट करने में दोष भी नहीं अतः निम्नलिखित महानुभावों के शुभ नाम जिन्हों ने आर्थिक रूप में सेवा की है प्रकाशित किये जाते हैं :—

१ श्रीमती उत्तमी बाई जी ५१) रु०
२ आर्य समाज अबोहर मण्डी (फिरोजपुर) ५०) रु०
३ श्री स० जेसाराम जी C/o दावर शू कं० शू मारकीट आगरा ३०) रु०
४ ला० पुरुषोत्तम लाल जी बहल रिटायरड। सुपरिंटैंडेंट मिनिस्ट्री डिफैन्स न्यू देहली २५) रु०
५ आर्य महिला परोपकारिणी सभा अबोहर मण्डी २५) रु०
६ धर्मपत्नी श्री ला० रामस्वरूप जी पुरी रेलवे गार्ड तथा प्रेम-सागर बांस बाज़ार फिरोज़पुर २५ रु०
७ श्रीमती धर्मदेवी जी धर्मपत्नि श्री ला० रामलाल जी इंजिनियर गर्वन्मैण्ट पावर हाऊस चन्दौसी। २५) रु०
८ श्री वीरेन्द्रजी सपुत्र श्रीला० कृष्णलालजी S.D.O.P.W.D. चंडीगढ़ २५) रु०
९ श्री ला० लक्ष्मणदास जी रामप्रकाश जी तोपखाने वाले बरेली (यू. पी.) २१) रु०
१० श्री डा० नारायणदास जी आई स्पैशिलस्ट फैन्सी बाज़ार गौहाटी (आसाम)। २१) रु०
११ स्त्री समाज लोयर बाज़ार शिमला। २०) रु०

१२ श्रीमान् मलक हर नरायन जी खन्ना मैनेजर हिन्दोस्तान कमर्शल बैंक शिमला । ११) रु०

१३ श्री ला० ज्ञानजन्द जी वर्मा छोटी थाई नाई की मण्ढी आगरा । १०) रु०

१४ ला० बुद्धराम जी कुठयाला रामसदन होश्यारपुर । १०) ,,

१५ श्रीमती धर्मपत्नी ला० पुरुषोत्तमलाल जी १०) रु०

१६ श्रीमती कौशल्या देवी जी धर्म पत्नी भक्त मोहन लाल जी मुज़फ्फरनगर १०) रु०

१७ श्रीमती सुशीलादेवी-शकुन्तला देवी जी मुज़फ्फरनगर १०) ,,

१८ श्री ला० जगदीशचन्द्र जी दावर, रोहतक १०) ,,

१९ श्रीमती वेदप्रभा जी धर्मपत्नी ला० जगदीशचन्द्र जी दावर रोहतक । १०) रु०

२० श्रीमती सरस्वती देवी जी धर्मपत्नी ला० रघुवरदयाल जी भटनागर मुहल्ला सोहनगंज सब्ज़ी मण्डी (देहली) १०) रु०

२१ श्रीमती धर्मपत्नी हेमनानी R.A. Executive Eng. Sector A चण्डीगढ़ १०) रु०

२२ श्रीमती रामप्यारी जी धर्मपत्नी ला० गौरी शंकर जी नियर लुध्याना । १०) रु०

२३ श्रीमती शान्ता देवी जी धर्मपत्नी ला० मदन गोपाल जी जालन्धर । १०) रु०

२४ श्री मेजर डाक्टर पासी जी लोयर बाज़ार शिमला १०) रु०

२५ श्री ला० बालकृष्ण जी सूद होशायरपुर ११) रु०

२६ ला० रामसुखदास श्री सूद, प्रधान डी, ए, वी हाई स्कूल शिमला । १०) रु०

समर्पण

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

जगन्नियन्ता जगदीश की असीम अनुकम्पा से महर्षि परिव्राजकार्य स्वामी दयानन्द जी महाराज द्वारा प्रेरित "पंच-महायज्ञविधि के ब्रह्मयज्ञ प्रसाद ३०००, देवयज्ञप्रसाद ६०००, पितृ यज्ञ प्रसाद ३०००, अतिथि यज्ञ प्रसाद २०००, यज्ञप्रसाद ४०००, ब्रह्म प्रसाद २०००, भगवद्यज्ञप्रसाद १०००, मौन यज्ञप्रसाद २०००, नारी कर्त्तव्य प्रसाद १०००, प्रेम सुमन प्रसाद १०००, अमृत प्रसाद १०००, परिवारिक सत्सङ्ग प्रसाद १९००० (४५०००) अपने प्रभु प्रेरित विचारों के रंग में रंग कर प्रभु प्रसाद के रूप में भेंट की जा रही हैं । इस वर्ष शिमला ३ मास मौन के पुण्य दिनों उसी प्रभु सच्चिदानन्द स्वरूप की कृपा से पुस्तक "ब्रह्म सोम प्रसाद" मुझे लिखने की प्रेरणा मिली। उसी प्रेरणा के कारण प्रस्तुत पुस्तक "ब्रह्म सोम प्रसाद" तैयार हो सकी है । भगवान की प्रेरणामयी रचना भी उसी जगदीश्वर के पवित्र चरणों में समर्पित है ।

मैं अपने गुरुदेव प्रातः सायं स्मरणीय पूज्यपाद श्री महात्मा प्रभु आश्रित स्वामी जी महाराज को विनम्रतापूर्वक नमस्कार करता हुआ धन्य वाद करता हूं जिन का आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहता है । उन के संग तथा उन की रचित पुस्तकों के स्वाध्याय से मुझे ऐसी पुस्तकों के लिखने का साहस हुआ है । यह मेरा अटल विश्वास है ।

१—उन महानुभावों का भी धन्यवाद करता हूं जिन की पुस्तकों के स्वाध्याय से इस पुस्तक के लिखने की सहायक सामग्री प्राप्त हुई है । मेरे इस पवित्र कार्य में सहयोग देने वाले व्यक्ति मेरे प्रेमी म० महेन्द्रपालजी तथा उसके प्रकाशकों को प्रभु आशीर्वाद दें ।

२—मेरे इस व्रत में मेरे प्रेमी श्री ला० शान्तिनाथजी हिमालय

फूट हाऊस, ला० द्वारकादास जी सब्जी मारकीट, ला० रत्न चन्द जी तथा ला० दयानन्दजी परिवार सहित शिमला ने श्रद्धा सात्त्विक भावना से जो मेरी सेवा की साथ व्रत के निर्विघ्न पूर्ण होने में सहायक रहे, साथ श्री ला० रामलालजी इंजीनियर गवर्नमैंट पावर हाऊस चन्दौसी, ला० रामकुमार जी तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती जनक दुलारीजी, म० रामलक्ष्मणपालजी चन्दौसी निवासी, श्री रायसाहिब कृष्णलालजी S. D. O. P. W. D. चन्डीगढ़ तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती देवकीजी ने मेरी आवश्यकताओं को मालूम कर पूर्ण करने में सहायता करते रहे। मैं उन सर्व परिवारों का अति आभारी हूँ। प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि इन सर्व परिवारों की धर्म कार्यों में प्रवृत्ति तथा अधर्म कार्यों से निवृत्ति बनाये रखें—और इन्हें आशीर्वाद दें कि इस प्रकार निष्काम भाव से कर्म करते हुए अपने जीवन को सफल करें।

३ —प्रायः पुस्तक लेते समय पुस्तक पर पुस्तक का मूल्य अङ्कित न देख कर मुझ से प्रेमी प्रश्न किया करते हैं। ऐसे प्रेमियों की सेवा में निवेदन है कि अग्नि में जो वस्तु (हवि) डाली जाती है वह विश्व में प्रसारित हो जाती है। सन्यासी भी अग्नि रूप होता है अतः मैं जब भी पुस्तक लिख कर प्रकाशित करने की आकांक्षा करता हूँ प्रायः प्रभु प्रेरणा से जिन प्रेमी सज्जनों के पास भगवद्पूंजी होती) है वह सात्त्विक भावना से अपनी पवित्र कमाई का भाग भेज देते हैं। पुस्तक छपवा कर प्रेमी सज्जनों की सेवा में भेंट कर दी जाती है-अतः जो भी प्रेमी इस निष्काम ज्ञान यज्ञ में अपनी पवित्र कमाई का भाग भेजना चाहें वह निम्न पते पर भेज कर प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त कर सकते हैं।

४—जिन प्रेमियों के पास यह पुस्तक पहुँचे वह कम से कम अन्य १० व्यक्तियों को अवश्य पढ़ावें ऐसा करने से उन्हें भी प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त होगा।

प्रार्थना

ओ३म् उपह्वरे गिरिणाम् सङ्गमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत। यजु० अ० २६ म० १५

भावार्थ--जो मनुष्य पर्वतों के निकट और नदियों के मेल में योगाभ्यास से ईश्वर की और विद्या से विद्या की उपासना करे—वह उत्तम बुद्धि व कर्म से युक्त| विचारशील बुद्धिमान होता है।

हे सच्चिदानन्द स्वरूप प्रभु! तू सत्-चित आनन्द है और मैं सत् चित हूं। आनन्द की प्राप्ति के लिए जन्म जन्मान्तर से बिलबिलाता हुआ आवागमन के चक्कर में फिर रहा हूँ। जब से तेरी कृपा से मैंने सन्यास आश्रम में प्रवेश किया है तभी से मैं ग्रीष्म ऋतु में नदी स्थान या पर्वत स्थान में तेरी प्रेरणा द्वारा; मौन रूप रह कर तेरे चरणों का वास प्राप्त करता हूं। तू ने उपरोक्त अपनी वेद की अमृत वाणी द्वारा आदेश किया है कि जो पर्वतों तथा नदियों के स्थान पर तेरे चरणों का वास प्राप्त करता है—वह उत्तम बुद्धि व कर्म से युक्त विचारशील बुद्धि प्राप्त करता है—परन्तु नाथ! मैं तो अभी कोरा का कोरा ही हूं।

ओ३म् अपां मध्ये तस्थिवान्सं तृष्णाऽविदत् जरितारम् मृडा सुक्षत्र मृडय॥

ऋ० ७-७९-४।

शब्दार्थ—मुझ स्तोता को पानी के बीच में बैठे हुए भी प्यास लगी है। हे। शुभ शक्ति वाले! मुझे सुखी कर—सुखी कर।

हे प्रभु! क्या तुम्हें मेरी दशा पर तरस नहीं आता। सन्त लोग मेरे जैसे पर हंस रहे हैं और कह रहें हैं—

"मुझे देखत आवत हांसी–पानी में मेन प्यासी ।।

सचमुच मैं तो पानी के बीच में बैठा हुआ भी प्यास से व्याकुल हो रहा हूँ। तेरे करुणा सागर में रहता हुआ भी दुखी हूं—संतप्त हूँ। जब तूने मेरी इच्छाओं को पूरा करने के लिये यह संसार ऐश्वर्यों से भर रखा है—और तुम प्रतिक्षण मेरी एक २ आवश्यकता को बड़ी सावधानी से ठीक २ पूर्ण कर रहे हो, तब मुझे अपनी इच्छा या कामना रखने की क्या आवश्यकता है--प्रभो ! न जाने क्यों मुझे अनेकों तृष्णाएँ लग रही हैं-सैंकड़ों कामनाएं मुझे जला रही हैं। हे नाथ ! क्या करूं ? इस विषम दशा में मेरा कौन उद्धार करेगा। हे उत्तम शक्ति वाले ! मैं इतना अशक्त हो गया हूं—इतना निर्बल हूं कि सामने भरे पड़े हुये पानी से भी अपनी प्यास बुझा लेने में मैं असमर्थ हूं। मैं जानता हूं कि मुझे क्या करना चाहिये, परन्तु निर्बलता इतनी है कि उसे मैं कर नहीं सकता। हे सच्चिदानन्द स्वरूप ! मैं देखता हूँ –आत्मा में सचमुच अपरिमित बल है तो भी मैं उस बल को ग्रहण नहीं कर सकता। मैं जानता हूं कि मेरी आत्मा अमूल्य ज्ञान रत्नों का भण्डार है, पर मैं उस रत्नाकार के बीच में बैठा हुआ भी ज्ञान का भिखारी बना हुआ हूं। मैं जानता हूं कि तुम मेरे आनन्दमय प्रभु सर्वदा सर्वत्र हो, सदा मेरे साथ हो, पर फिर भी मैं कभी आनन्द प्राप्त नहीं कर पाता। हे सविता देव ! मैं अमृत के सागर में पड़ा मरा जा रहा हूं। तेरी अमृतमय गोद में बैठा हुआ स्वयं अमृतत्त्व होता हुआ बार २ मृत्यु के मुंह में आ रहा हूँ। हे नाथ ! अब तो मुझ पर दया करो। मुझे इस विषमावस्था से उभार लो, मुझे सुखी कर दो। हे परमकारुणिक ! मुझे इतना

बल तो दें कि मैं सामने भरे पड़े जल का सेवन कर सकूं—इस से अपनी तृष्णा शान्त करके सुखी तो हो सकूं। हे शक्ति वाले ! जिस तू ने मुझे इस पानी के सागर में रखा है--वही तू मुझे इस के पीने का सामर्थ्य भी प्रदान कर जिस से मैं अपनी प्यास बुझा कर सुखी हो सकूं।

हे नाथ ! तेरा स्तोता कब से चिल्ला रहा है इसे अब तो सुखी कर दो।

ओम शान्ति !! !!!

पतित का प्रलाप

पतित नहीं जो होते जग में कौन 'पतित पावन कहता ?
अधमों के अस्तित्व बिना, 'अधमोद्धारण' कैसे कहता ?
होते नहीं पातकी, 'पातकी-तारण' तुम को कहता कौन ?
दीन हुए बिन दीनदयालो ! 'दीनबन्धु' फिर कहता कौन ?
पतित, अधम पापी दीनों को, क्यों कर तुम बिसार सकते ?
जिन से नाम कमाया तुम ने, कैसे उन्हें टार सकते ?
चारों गुण मुझ में पूरे, मैं तो विशेष अधिकारी हूं ।
नाम बचाने का साधन हूँ, यूं भी तो उपकारी हूं ।
इतने पर भी नाथ ! तुम्हें यदि मेरा स्मरण नहीं होगा ।
दोष क्षमा हो, इन नामों का रक्षण फिर क्यों कर होगा ?
सुन प्रलापयुत पुकार अब तो करिये सत्वर मम उद्धार ।
नहीं छोड़िये नामों को; यों कहने को होता लाचार ।
जिस का कोई नहीं तुम्हीं उस के रक्षक कहलाते हो ।
मुझे नाथ ! अपनाने में फिर क्यों इतना सकुंचाते हो ?

नाम तुम्हारे चिरसार्थक हैं मुझ को दृढ़ विश्वास यही ।
इस हेतु पावन कीजे प्रभु! मुझे कहीं से आश नहीं ।
चरणों को दृढ़ पकड़े हूं, अब नहीं हटूंगा किसी तरह ।
भले फेंक दो, नहीं सुहाता, अगर पड़ा भी इसी तरह ।
पर यह रखना, स्मरण नाथ! जो यूं दुत्कारोगे हम को ।
"अशरण-शरण" "अनाथ-नाथ" प्रभु! कौन कहेगा फिर तुम को ।

भवदीय

ब्रह्मानन्द स्वामी

c/o भारत गलास कम्पनी सदर बाज़ार

देहली

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि । धियो योनः प्रचोदयात् ॥



श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

"ब्रह्म सोम प्रसाद"

मन्त्र—ओ३म् पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसं अनुपश्येत् पन्थाम् । ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा अन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ॥ ऋ० १०, ११७-५ ॥

भावार्थ—शक्तिशाली पुरुष को चाहिये कि वह याचना करने वाले की अवश्य पालना करे—उसे अन्नादि से तृप्त सन्तुष्ट करे। वह बहुत दूर तक के मार्ग को देखे। यह धन निश्चय से रथ के चक्रों की तरह ऊपर नीचे चला करते हैं, बदलते रहते हैं, एक को छोड़ दूसरे के पास आया जाया करते हैं।

"देह धरे का गुण यही, देह देह कछु देह।
देह खेह हो जायेगी, फिर कौन कहेगा देह"।

धन को जाते हुए कितनी देर लगती है? व्यापार में घाटा हो जाता है। चोर लुटेरे धन लूट ले जाते हैं घर को आग लग जाती है। मनुष्य स्वयं बीमार पड़ जाता है। हजारों रुपए खर्च हो जाते हैं। मनुष्य सैंकड़ों उपाय करे, पर लक्ष्मी उसको क्षण भर में छोड़ कर चली जाती है। वास्तव में लक्ष्मी देवी बड़ी चञ्चल है। यह मनुष्य कितना मूर्ख है जो यह समझता है कि बस यदि दूसरे को मैं धन दान नहीं दूँगा, तो और किसी तरह मेरा धन मुझ से जुदा नहीं हो सकेगा। अरे भाई! धन तो जब समय आयेगा तो एक पल भर में तुझे कंगाल बना कर कहीं चला जाएगा—कवि लिखता है :—

"माया दो प्रकार की, जो कोई जाने खाय।
एक मिलावे राम को, एक नरक ले जाय॥
माया मेरे राम की, मोदी सब संसार।
जाकी चिट्ठी उतरीं, सो मति खरचनहार॥
कबीरा, माया-बेसवा, दोनों की इक जात।
आवत को आदर करे, जात न पूछे बात"॥

इस लिये धनी पुरुष ! यदि इस समय कर्मों के योग से तेरे पास धन सम्पत्ति आई हुई है तो तू उसे यथोचित दान देने में कभी संकोच मत कर। जीवन मार्ग को जरा विस्तृत दृष्टि से देख और सत पात्र को दान देने में अपना कल्याण समझ, अपनी कमाई समझ। सच्चा दान करना सच मुच जगतपति भगवान को उधार देना है जो कि बड़े भारी दिव्य सूद के साथ वापिस मिलता है। जो जितना त्याग करता है वह उस से न जाने कितना गुणा अधिक प्रतिफल पाता है। यह ईश्वरीय नियम है।

दृष्टान्त

एक बनिए का बालक दो रुपया का घी बरतन में ले कर घर जा रहा था, चलते २ मार्ग में क्या देखा एक पौंड पड़ा हुआ है, तो उस के निकट पहुंच कर घी का बरतन नीचे फैंक कर पौंड पर गिर पड़ा, और जल्दी से पौंड उठा कर जेब में डाल दिया। गिरते हुए बालक को देख कर पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा "कोई बात नहीं उठ खड़ा हो जा"! बालक खाली बरतन ले कर घर पहुंचा तो पिता जी ने पूछा, "घी नहीं लाया"! तो लड़के ने कहा "घी ले कर आ रहा था तो मार्ग में गिर पड़ा और घी भी बह गया"। यह बात सुन कर पिता क्रोधित होने लगा, तो बालक ने कहा पिता जी ! मेरी बात तो पहले सुन लो, "मैं घी ले कर आ रहा था तो मार्ग में एक पांड पड़ा देखा, तो अब उसे कैसे उठाऊं, यही निश्चित कर के मैं पौंड पर गिर पड़ा और घी का बरतन भी फैंक दिया और जल्दी से पौंड उठा कर जेब में डाल लिया, मुझे गिरता देख कर लोगों ने सहानुभूति भी की, अब दो रुपये के बदले में पन्द्रह रुपये ले आया हूँ,साथ ही लोगों की सहानुभति भी,यदि पहले मैं दो रुपया त्याग न करता,तो यह पन्द्रह रुपये कैसे प्राप्त करता,देखा मेरे त्याग

का फल। भगवान ऐसे ही एक के बदले फिर अनेक कर देता है।

दान तो संसार का महां सिद्धान्त है पर इस इतनी साफ २ बात को यदि लोग नहीं समझते हैं, तो इस का कारण यह है कि वह मार्ग को दूर तक नहीं देखते। जीवन मार्ग कितना लम्बा है। यह संसार कितना विस्तृत है और इस संसार में जीवों का शुभ, अशुभ कर्मों का फल उन्हें कब का कब मिलता है। यह सब कुछ नहीं दिखाई देता। इसी लिए हमें संसार में चलते हुए अटल नियम भी दिखाई नहीं देते, जिस के अनुसार सब मनुष्यों का उन के शुभ अशुभ कर्मों का फल अवश्यम्भावितया भोगना पड़ता है। यदि इस संसार की गति को हम जरा भी ध्यान के साथ देखें, तो पता लगेगा, कि धन सम्पत्ति इतनी अस्थिर है, कि यह रथ चक्कर की तरह घूमती फिरती है, आज इस के पास है तो कल दूसरे के पास। कवि ने लिखा है—

'यह दुनिया आजमुन अम है तेरी, कल तेरे दुशमन की
ज़ने बदकार कब पाबन्द होगी, एक शौहर की,'

अर्थात्—ऐ मनुष्य ! यह लक्ष्मी बड़ी रूपवती है, दिल इस में मत लगा, वैश्या की तरह आज तेरे पास है तो कल तेरे शत्रु की हो जायेगी—इस पर विश्वास मत कर ! सावधान रहे ! पर हम इतनी क्षुद्र दृष्टि वाले हैं और इसी लिये "आज" में इतने ग्रस्त हैं कि हम कल को देखते हुए भी देखते नहीं। संसार में लोगों का नित्य धन नाश होता हुआ देखते हुए भी अपने धन नाश के समय से एक घण्टा पहले तक भी हम इस घटना के लिए कभी तैयार नहीं होते, और इसी लिए जरा से भी धन नाश होने पर इतने रोते चिल्लाते हैं। यदि हम मार्ग को विस्तृत देखें तो उन धन गामों और धन नाशों को अत्यन्त तुच्छ बात समझें। यदि संसार में प्रति क्षण चलायेमान घूमते हुए इस

धन चक्कर को देखें, इस बहते हुए धन प्रवाह को देखें तो हमें धन जमा करने का जरा भी मोह न रहे, किन्तु धन के ठीक उपयोग करने का उचित व्यय करने का भी हम ध्यान करें। इस लिये भाई ! तुम जीवन मार्ग को दीर्घ देखो, विशाल दृष्टि से देखो कि जगत में जो ईश्वरीय धन चक्कर चल रहा है, वह उपयोग के लिए ही है और सत्पात्र में ही दान देना धन का श्रेष्ठ उपयोग है। अब से तेरे पास भाई यदि कोई निस्स्वार्थ सच्चा याचक आये तो उसे कभी खाली मत भेजना। सामर्थ्य के अनुसार उसे जरूर भरपूर कर देना और विशाल दृष्टि से देखना कि ऐसा कर के तू ने अपना ही लाभ किया है। अपना एक आवश्यक स्वाभाविक कर्तव्य करके केवल अपना ही लाभ उठाया है।

प्यारे ! दान के अर्थ है ! द—के अर्थ है काटना और न–के अर्थ हैं बन्धन—अर्थात् बन्धन से छुटकारा पाना। वह मनुष्य जो लाखों, करोड़ों की सम्पत्ति रखने वाला है जब उस पर अन्त काल आता है तो स्त्री, सन्तान, मित्र, दोस्त सम्बन्धी सभी यही कहते हैं; कि भाई ! कुछ इस के हाथों से दान करवा लो। हाथ का दिया हुआ फिर काम आता है। कोई कहता है कि दाल रोटी पका कर गरीबों, मोहताजों को खिला दो, कोई कहता है गरीबों को कपड़े बनवा दो, कोई कहता है कितनी महान सम्पत्ति का यह मालिक है इस के नाम का औषधालय खुला दो, कोई कहता है, पाठ शाला इस के नाम पर जारी कर दो, काफी रकम पाठशाला के नाम निकाल कर बैंक में जमा करादो। अब शुभ सम्मति और शुभ विचार तो प्रेमी दे रहे हैं, परन्तु जिन के हाथ में सम्पत्ति की चाबी है वह यह बातें सुन कर हां २ तो कर रहे हैं पर ऐसा करते नहीं, इनकार भी नहीं कर सकते,

क्यों ! सम्भव है यह जीवित हो जाए तो खजाना सारा हम से ले न ले, साथ ही यह भी देख रहे हैं कि इतनी सम्पत्ति रखने वाले का यह हाल हो रहा है। पर नहीं समझे के नेकी से मुंह मोड़ कर हम अपना जीवन नर्क रूप बना रहे हैं, और पता नहीं कि इस की मृत्यु होती भी है या नहीं। और यह भी पता नहीं कि क्षण के पश्चात हम भी होंगे या नहीं, पर शुभ कर्म की ओर हाथ उद्धार नहीं हो सकता—

सन्त कबीर कहते हैं—

> प्रभुता को हर कोई भजे, प्रभु को भजे न कोय।
> जो प्रभु को भजे, प्रभुता चेरी होय ॥
> चाहन हारे सुख सम्पती के, जग में मिलत घनेरे ।
> कोओ एक मिलत कहुँ प्रेमी, नगर डिगर सब हेरे ॥

अर्थात—सांसारिक आराम, सुख और धन दौलत के इच्छुक तो बहुत से मनुष्य मिलते हैं परन्तु उस सच्चे आनन्द स्वरूप के पुजारी तो कहीं नहीं मिलते हैं, हम ने सारे शहर नगर को देख लिया ।

संसार में नाम उसी का जीवत होता है जिस का संसार में मान होता है। मान उसी का होता है, जिस का संसार में दान होता है। आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक जितने दायरे में दान होता है,उसी प्रकार का दान और नाम होता है, दान कई प्रकार का होता है, आधिभौतिक आधिदैविक, आध्यात्मिक—जितने दायरे में दान होता है उसी प्रकार मान और नाम होता है।

१ आधिभौतिक दान—नियत समय तक रह कर नाश होता है यह नाम तमोगुण होता है

२ आधिदैविक—युग पर्यन्त रहता है, यह दान रजो गुण होता है ।

३ आध्यात्मिक—अमर हो जाता है और यह दान सतो गुण होता है ।

(१) जो मनुष्य दान करके अपने लिये सुख सम्पत्ति की इच्छा रखता है, वह तामसिक बन्धन है ।

(२) जो मनुष्य दान कर के सुख सम्पत्ति त्याग करता है, परन्तु अपने दान किये की प्रशंसा का इच्छुक है, यह राजसिक बन्धन है ।

(३) जो अपना परिवार जान कर सुधार, उपकार करता है वह सात्विक बन्धन है ।

(४) जो प्रभु का काम समझ कर सब में अपनी व परमात्मा की आत्मा को जान कर उपकार करता है वह जीवन मुक्त है । दृष्टान्त देता हूं समझ लें—

(१) एक मनुष्य जंगल से सैर करता हुआ गुरज़ा तो रोने की आवाज़ आई, गया, क्या देखा ? एक नन्हीं सी बालिका भूमि पर पड़ी रो रही है, उसे उठा, छाती से लगा, प्यार किया फिर इधर उधर देखा, कोई भी उस बालका का वारस न मिला, तो घर ले आया स्त्री को देकर दूध लाया, उस को पिलाया, बड़े प्यार से पालना आरम्भ कर दी । लालन पालन करते हुये भगवान से कहता है कि धन्य हो प्रभु ! तू किस प्रकार अनाथों का नाथ बन जाता है । (२) कुछ दिन बीते, पत्नी से कहा, इसे अपनी पुत्री बना कर इस का विवाह कर दें । ऐसा निश्चय कर समय आने पर उस का विवाह कर दिया (३) कुछ दिनों के पश्चात उस की धर्मपत्नी की मृत्यु हो गई, तो रोता है और दिल में

कहता है, यदि आज वह लड़की (जिस का विवाह कर दिया था) होती, तो उस के बदले में विवाह कर लेता, और मेरा घराना आबाद हो जाता।

(४) लोग कन्याओं का विवाह दाम ले कर करने लगे तो दिल में दुःखी होकर कहता है, यदि वह लड़की आज होती, उसके बदले में तीन चार हज़ार रुपया ले कर आनन्द भोगता, प्यारे—अब यहां समझो, पहला विचार तो जीवन मुक्त है। (२) सात्विक (३) रजो गुण (४) तामसिक।

प्रश्न—दान कौन करता है ?

उत्तर—जिस का हृदय महान होता है।

प्रश्न—हृदय महान कौन होता है ?

उत्तर—जिस का हृदय पवित्र होता है।

प्रश्न—हृदय पवित्र कैसे होता है ?

उत्तर—जो राग द्वेष से रहित होता है।

प्रश्न—राग द्वेष किस में रहता है ?

उत्तर—विषयों में राग-प्रेम, सत्य, नियाए, दया से द्वेष।

प्रश्न—राग द्वेष कहां होता है ?

उत्तर—अन्तःकरण में।

प्रश्न—अन्तःकरण में राग द्वेष कैसे प्रवेश करता है ?

उत्तर—आंख और कान से।

प्रश्न—आंख कान कैसे पवित्र होता है ?

उत्तर—निष्कम संस्कार से, निष्काम कर्म से।

निष्काम संस्कार कैसे बनते हैं ? सुनो !

१—टोबाटेक सिंह (पाकिस्तान) वैदिक भक्ति साधन आश्रम में प्रति वर्ष चारों वेदों द्वारा ब्रह्म पारायण महा यज्ञ

होता था। काफी संख्या में साधक साधनार्थ आते थे। दो मास पर्यन्त यज्ञ होता था, साधु, सन्त, महात्मा, विद्वान, पण्डित भी समय २ पर पधारते थे और वेद के अमृत उपदेशों से जनता को कृत कृत्य किया करते थे। दैव योग से एक दिन श्री पण्डित सदा शिव जी महाराज आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब पधारे, तो यज्ञ हो जाने के पश्चात उन्होंने उपदेश देना आरम्भ किया। उन्होंने बतलाया, कि हम लोग कहीं स्थाई रूप नहीं रहते। सभा के प्रोग्राम अनुसार हमें प्रचारार्थ जगह २ पर जाना पड़ता है, और कहा, आज यहां हैं तो कल कलकत्ता, फिर बम्बई फिर लाहौर इत्यादि, इसी प्रकार हमें घूमना पड़ता है—स्थान-स्थान पर जाने से हमारे साथ अनेकों नर नारियों से सम्पर्क होता है, और उनमें से कोई प्रेमी आकर कहता है। महाराज! मानसिक शान्ति नहीं मिलती, कोई कहता है महाराज! कार्य व्यवहार हमारा ठीक नहीं चल रहा, कोई कहता है हमारे घर में कोलाहल मचा रहता है, इत्यादि इस का साधन पूछने आते हैं, और कहा, "एक दिन मेरे पास एक प्रेमी का पत्र आया, उस में लिखा था—पण्डित जी आप मुझे काफी समय से जानते हैं। मैं किस प्रकार से संसारिक व्यवहारिक कार्य व्यवहार में कुशल सुखी था। पर अब अपनी अवस्था प्रकट करते हुए दुःख और लज्जा सी आती है, वह यह कि मेरा कार्य व्यवहार मन्दा हो गया है। गुजारा निर्वाह करने से तंग हूँ। आप का वास अनेकों ऐसे प्यारे भक्तों से पड़ता होगा, जो धन धान्य से भरपूर और दयावान होंगे। यदि आप किसी ऐसे भगवत प्यारे प्रेमी से मेरी अवस्था पहले कि आप जानते हैं, प्रकट करते हुए वर्तमान स्थिति प्रकट करें, और कुछ आर्थिक सहायता करादें जिस से मैं अपना निर्वाह साधारण रूप से कर

सकूं, बड़ी कृपा होगी। मेरी यह अवस्था आम जनता में प्रकट

न करें, और आशीर्वाद दें कि मेरा शेष जीवन मान, मर्यादा से व्यतीत हो जाए।

सज्जनों ! जब मेरे पास यह चिट्ठी आई, तो आप लोग जानते हैं कि हमारा निर्वाह तो केवल नियत वेतन पर ही होता है। हमें स्वयं सहायता करना तो असम्भव होता है। तो मैंने चिट्ठी पर यह शब्द लिख कर एक भक्त प्रेमी की सेवा में भेजी कि यह पत्र भेजने वाले अच्छे कुल वासी, दयावान, दान करने वाले और उदार हृदय प्रेमी हैं। समय के चक्कर मेंआ जाने पर जो कुछ भी थोड़े शब्दों में अपनी अवस्था को उन्होंने लिखा है, मुझे पूर्ण विश्वास है, सत्य ही है अतः आप इसे पढ़ें, यदि आप के हृदय में इस के प्रति सहायता की भगवान प्रेरणा करें, तो आप इन्हें जो भी आप की इच्छा हो चिट्ठी पर पता लिखे के अनुसार उन्हें भेज दें। और कहा इसी प्रकार समय २ पर कई बार मुझे भिन्न २ प्रेमियों के पत्र आये तो मैं एक ही भगवत प्रेमी की सेवा में भेज देता रहा। मुझे जहां तक याद आता है कोई छः सात बार ऐसी चिट्ठियां आने पर मैंने उनकी सेवा में भेजीं होंगी और वह अपनी श्रद्धा सातविक भावना से उन्हें डाक द्वारा भेज देते रहे, और मैं साल के साल उन की समाज के उत्सव पर आता हूँ पर उन्होंने कभी मुझ से यह प्रकट तक नहीं किया, कि अमुक सज्जन का पत्र जो आप ने भेजा था मैं ने उस को इस कदर रकम भेज दी है। यह है वास्तविक दान जिस का फल मुक्त जीवन होना। तथ्य (निष्कर्मण संस्कार) और कहा, वह सज्जन कौन से हैं वह हैं श्री लाला मथुरा दास जी प्रधान। अब ज्यूंही लाला मथुरा दास के कान में पण्डित जी के शब्द पड़े, तो उन्होंने जार २ रोना आरम्भ कर दिया, काफी

संख्या में सतसंग में नर नारी उपस्थित थे। प्रधान जी को जार २ रोते हुये देखकर लोगों ने आश्चर्य में हो कर प्रधान जी से पूछा, कि आप इस कदर क्यूं रो रहे हैं। तो उन्होंने कहा कि पण्डित जी ने मेरा नाम ले कर मुझे लज्जित कर दिया है, मैं कब देने वाला और कहां मुझे सामर्थ्य देने की। यह है मुक्त जीवन दान।

साहब से सब होत है, बन्दे ते कुछ नाइँ ।
राई से पर्वत करे, पर्वत राई जाइँ ।

२—एक उपदेशक उपदेश कर रहा था कि बिहार में काल पड़ गया है। लोग भूख से मर रहे हैं। भूख निवृत्त्यार्थ अपने नन्हें २ बच्चों को भून कर खा रहे हैं, इत्यादि। एक सेठ लाख पति जो बैठा था उस ने कहा मेरा एक हजार रुपया दान लिख लो। दूसरी तरफ एक विधवा देवी ने जो यह उपदेश सुना इस की आंखों में आंसू आ गए कान में चाँदी की एक बाली सिरफ थी तत्काल उसे उतारी जोर से गुप्त रूप दानार्थ फैंक दी। अब सोचो वास्तविक दान किस का है ? सेठ का दान है रजोगुण और देवी का दान है सतोगुण।

३—एक आदमी ने ५० रुपये दान दिया और कहा स्टेज पर खड़े हो कर सुना दो यह है तमोगुण। संसार में धनियों में धनी फोर्ड हेन्डरी माना हुआ था वह कहता था कि यदि मैं समुद्र के किनारे बैठ कर छः मास पर्यन्त प्रातः सायंकाल लगातार एक एक रुपया अपने हाथों समुद्र में फैंकता रहूँ तो मेरा धन समाप्त नहीं होगा। देखो ! इतना धनी, पर दुर्भाग्यवश एक छटांक भी अन्न नहीं खा और पचा सकता था। इस का कारण ! पूर्व जन्म में धन तो दान किया, पर अन्न का दान नहीं किया, और कहते हैं कि उस की मृत्यु भी उसी धन के खजानों में हुई। कैसे ! क्यूं !

अपने खजाने को देखने गया (खजाने के दरवाजे ऐसे ढँग से लगे हुए थे कि जब मनुष्य अन्दर गुजर जाता तो स्वयं बन्द हो जाते थे) साथ ही उस के साथी भी थे, जिन को खजाना दिखाते थे, वह देखते २ दरवाज़ो से गुज़र कर अपने २ स्थान पर वापस चले गये, पर फोर्ट हेन्डरी पीछे रह गया, दरवाजे बन्द हो गये। तीन दिन अन्दर भूख, प्यास से व्याकुल हो कर तड़प २ कर प्राण दे दिये, सोचो! क्या यह ख़ज़ाना कुछ सहायता कर सका, जिस को देख कर वह नाज करता था।

भगवान श्री कृष्ण जी महाराज ने गीता में क ा है—

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥१२॥

गीता अ० ३

भावार्थ—मगर ले के पदार्थ जो देता नहीं।
समझ लो कि वह चोर है बिलयकीन ॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषै।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३॥ अ० ३

भावार्थ—जो पापी खुद ही अपनी खातर ही पकाएँ।
तो अपने ही पापों का भोजन वह खाएँ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥२०॥ अ० ३

भावार्थ—सदा बस ही नेकी किये जाओ तुम।
जहां की भलाई दिये जाओ तुम॥

प्यारे—जगत रचिता की रचना को देखें ! तो उस की प्रत्येक वस्तु मनुष्य को संमार्ग दिखाने वाली प्रतीत होती है। गीता के श्लोकों को आप ने पढ़ा ! वह आदेश करते हैं। जो मनुष्य अपने लिये जीते हैं वह पापी हैं। और जो मनुष्य केवल अपना पेट भरता है, वह चोर है। पापी क्यूं है ? प्रभु की प्रत्येक वस्तु को देखो, तो कोई भी ऐसी वस्तु दिखाई नहीं पड़ती, जो केवल अपने लिये ही काम करती हो। सूर्य अपनी सारी गर्मी और प्रकाश विश्व कल्याणार्थ देता है। लाखों मन जल समुन्द्र से अपनी किरणों द्वारा उठाता है, परन्तु वह सारे का सारा बादलों के अर्पण कर देता है। बादल भी अपने पास नहीं रखते वह वर्षा के रूप में पृथ्वी को दे देते हैं। पृथ्वी उसे खेतों अन्य जड़ी बूटियों के हितार्थ दे देती है। और देखो ! सूर्य समुन्द्र का खारा जल ले कर मधुर साफ, शुद्ध बना कर फिर देता है। पृथ्वी जो एक बीज लेती है तो उस के बदले में हजारों लाखों बीज बड़ा कर देती है। इस प्रकार से दरिया, नदियां, खेतियां, फल-फूल जितने भी प्रभु रचना से रचे हुऐ हैं यह सब संसार के हितार्थ ही अपने आप को समर्पण कर देते हैं मनुष्य प्रभु का अमृत पुत्र कहलाता है अतः इस का कर्तव्य है कि वह केवल न अपने लिये जीए, किन्तु दूसरों के हितार्थ जीए। तभी वह प्रभु इच्छा को पूर्ण कर सकता है, वरना वह पापी है। यही गीता का उपदेश है।

दूसरी बात गीता ने कही है जो मनुष्य केवल खानार्थ भोजन बनाता और खाता है, दूसरों को भाग बांट कर नहीं देता, वह चोर है।

जब हम ने मनुष्य जन्म लिया था, नंगे बदन खाली हाथ आये थे, जो धन, माल, मकान सामान हम ने पाया है, वह यहां

का ही है, यहां पर ही हमने प्राप्त किया है। यह सब पदार्थ प्रभु के ही हैं। वह अपनी करुणा, दयालुता से हमें प्रदान करता है, ताकि हम उस की दुखी-सुखी प्रजा से मिल बान्ट कर खाएँ— न कि स्वयं ही सब कुछ हड़प कर जाते रहें। ऐसा न करने पर हम चोर हैं। हम जन्म लेते समय न कुछ साथ लाये थे, और न मृत्यु समय कुछ साथ ले जायेंगे, जिस मनुष्य में त्याग, दया, सेवा, दान का भाव नहीं है वह मनुष्य प्रभु का प्यारा नहीं बन सकता। प्रभु भक्ति, ईश्वर का चिन्तन और उस के गुणों का वर्णन, और उस का धन्यवाद करना मनुष्य का कर्तव्य है। केवल इस प्रकार की प्रभु भक्ति, ईश्वर चिन्तन, इत्यादी करने से मनुष्य का कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता, और वह जीवन सफल नहीं कर सकता। कहते हैं। के सज्जन ने एक मित्र से कहा, कि अमुक स्थान पर एक ईश्वर भक्त रहता है जो दिन रात उसकी भक्ति में मस्त रहता है। एक क्षण भी अन्य किसी कार्य में नहीं लगाता। प्रश्न हुआ, कि उस के खानपान का प्रबन्ध कौन करता है, तो उत्तर मिला कि उसका दूसरा भाई लोहार का काम करता है। वह जो कुछ कमाता है उसमें से अपने भाई को बांट कर देता है। तो अब मित्र ने कहा, कि उसके भाई का अधिकार भक्ति करने वाले से बड़ा है। जो स्वयं कमाता है, आप खाता और भाई को भी साथ खिलाता है, और कहा कि ऐसी रूखी भक्ति और माला के दाने गिनते रहना उस कुएँ की भांति ही हैं। जिस में जल न हो, उस गन्ने की तरह हैं जिस में रस न हो। सुनिये कवि ने लिखा है।

इनसान ज़िन्दगी में है, इन्सान की दवा,
यह वह दवा है, जिस से मिली रूह को शफ़ा॥

बेदर्द दिल इबादत, मक्कारियां फ़क़त।

मक्कारियों के वास्ते हैं, खुवारियां फ़क़त ॥
धोखा है यह खुदा से सरासर फ़रेब है ।
यह वह फराज़ है जो यकसर नशीब है ॥

प्रभु की प्रसन्नता के लिये मुख्य बात यह है कि हम उस की दुखी प्रजा से प्यार करें, जो मनुष्य तन, मन, धन, बुद्धि केवल स्वार्थ और अपने हितार्थ ही लगाता है, वह यह निश्चय जान ले, की यह वस्तुएँ देर तक उस के पास नहीं रह सकेंगी। शीघ्र उस से छिन जायेंगी । कठिन तो यह कि मनुष्य वास्तविक कर्तव्य से दूर जा रहा है, यदि मनुष्य से पूछा जाये कि तू क्या चाहता है। तो प्रायः यह उत्तर मिलेगा, कि सांसारिक सुख, मान, सन्मान प्राप्त होवे । दूसरी इच्छा यह कि अपने प्यारे प्रभु के दर्शन होवें। यह सारे कार्य एक सेवा धर्म से पूरे हो सकते हैं। कवि लिखता है—

परमात्मा दया का बदला बार २ देता ।
जहाने गम में सकूनों करार देता है ॥
हर एक रोगी की, हर दर्द की दवा ले लो ।
किसी गरीब से ज़रा दुआ ले लो ॥

मनुष्य इतना जानता हुआ भी प्रभु की इच्छा को पूरा नहीं करता, वह अपने सवार्थ अथवा पेट पूर्ति में लगा हुआ है।

तुम जानते हो कि यदि किसी माता के बच्चे से प्यार किया जाए, तो उस की माता प्यार करने वाले को प्रेम भरी दृष्टि से देखती है कहते हैं, एक सज्जन जब किसी ऐसे स्थान पर चले जाते, जहां उस का कोई परिचित न होता था, तो वह बिना

पूछ ताछ गृहस्थी के घर चले जाते, उनके बच्चों से प्रेम-प्यार करने लग जाते। ऐसा देख गृहस्थी परिवार उन से प्रेम करते और अपना लेते। इसका तात्पर्य यह है कि जिस माता के बच्चे से प्यार किया जाए तो अवश्य ही उस की माता स्वयं प्रेम भावना का भाव प्रकट करने लग जाती है। जब संसारिक माता के बच्चे से प्यार करने पर उस की माता गद् गद् प्रसन्न हो कर प्रेम करती है तो यह कब सम्भव हो सकता है, कि वह जगत जननी माता अपने बच्चों से प्यार करने वाले पर प्रसन्न न हो। और उस को दया और करुणा की दृष्टि से न देखे, और उस को इस निश्काम सेवा का फल न दे। इस वास्ते जो मनुष्य उस जगत माता के बच्चों से प्यार करता है, उन की सेवा करता, उन के साथ सहानुभूति दयाभाव से वर्ताव करता है वह ही जगत पिता की अमृत मयी गोद को प्राप्त करके आनन्द मोक्ष को प्राप्त करता है। मां का अपने बच्चों से कैसे प्यार होता है कवि लिखता है

इक मां की मामता को, समझता है मां का दिल
बच्चों की बेबसी पर, तड़पता है मां का दिल
बच्चा है बे करार तो, मां बे करार है
हर हाल में यह नूरे, नज़र पह निसार है

धन संग्रह से दान धन, सो गिन अधिक समान
बिना दान जो द्रव्य है, सो बिन सुमन समान
ईश्वर नाम के कारामो, सब धन डालो खोए
मूर्ख जाने गिर पड़ा, दिन दिन दूना हुए
गांठी हो सो हाथ कर, हाथों से कुछ दे

जो देगा सो पायेगा, इस में नहीं संदेह
ओम शांन्ति, शान्ति, शांन्ति,

मनुष्य जीवन पानी का बुलबुला है

आबो हवाओ पानी, की, इतनी कदर दानी।
क्या इसका हो भरोसा, जो शै हो आनी जानी॥
दुनियां भी खुद है फानी, हर शै भी उसकी फानी।
कुछ देर की हवा है, पर फूला हुआ है पानी॥
पानी का बुलबला है, इंसान की जिन्दगानी
इन्सान को भरोसा, क्या जीस्त और बका पर पर।
बेबस है यह घड़ी पर, लाचार है कज़ा पर॥
मट्टी का है यह पुतला — क्या नाज़ ओ दस्त पा है।
दारोमदार इस का, है आब और हवा है॥ पानी का
दरया के बुलबुलों में, पानी था थोड़ा थोड़ा।
जीने से हाथ उठाया, मरने से मुह न मोड़ा॥
मिट्टी से मिल गया था, आबो हवा का जोड़ा।
एक मौज ने बनाया, और दूसरी ने तोड़ा॥ पानी का
जीते हैं दिल लगी पर, मरते हैं बे बसी पर।
हम खुद ही हो रहे हैं, तय्यार खुद कशी पर॥
हिरसो हवस कुछ ऐसे, हावी हैं आदमी पर।
करते हैं तेरा मेरा, चन्द दिन की जिन्दगी पर॥ पानी का
चलने की फिकर करलो, दुनियां में नाम कर लो।
मंजिल भी सामने है, थोड़ा क्याम कर लो॥
खलवत में जाके बैठो, और ओ३म ओ३म कर लो।
आये हो जिस लिए तुम, जल्दी वह काम कर लो॥ पानी का

ओ३म् ईजानश्चित मारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन् । तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ॥

अथर्व १८।४।१४।

शब्दार्थ—जो मनुष्य सुख भोग के लोक से प्रकाशमय 'द्यौ' लोक के प्रति ऊपर उठना चाहता हुआ और इस प्रयोजन से वास्तविक भजन करता हुआ पुण्य कर्मों द्वारा चिनी हुई अग्नि का अन्तर अग्नि का आश्रय ग्रहण करता है उस ही शोभन कर्म करने वाले मनुष्य के लिए ज्योतिर्मय आत्म सुख को प्राप्त कराने वाला "देवयान" मार्ग इस प्रकाश रहित संसार-प्रकाश के बीच में प्रकाशित हो जाता है।

संसार में दो मार्ग चल रहे हैं एक मार्ग से संसार के लोग भोग में, प्रकृति में, प्रवृत होे रहे हैं। विश्व के एक से एक ऊँचे सुख भोग पाने के लिए दृढ़ता पूर्वक अग्रसर हो रहे हैं। दूसरे मार्ग के लोग भोगों से निवृत हो कर अपवर्ग की भाँति आत्मा की ओर जा रहें हैं। यह क्रमशः पितृयान और देवयान है। इन दोनों मार्गों द्वारा प्रकृति पुरुष के भोग और अपवर्ग नामक दोनों अर्थों को पूरी कर रही है। परन्तु प्रवृति और निवृति दोनों एक साथ कैसे हो सकती है। इस लिए जो लोग भोगों में विश्वास रखते हुए मुंह उठाये उधर जा रहे हैं। उन्हें लाख समझाने पर भी आत्मा की बात नहीं सुनेंगे। देवयान मार्ग उन्हें ही भास्ता है जो भोगों की निस्सारता को अच्छी तरह समझ गये हैं। परम लुभाने वाले बड़े २ दिव्य भोगों को (जिनका कि हमें अभी कुछ पता भी नहीं है) देख कर जो उनसे भी ऐसे

विरक्त हो चुके हैं कि वह संसार के सर्व श्रेष्ठ सुख भोग के इन्द्र आसनों को छोड़ ज्ञान स्वरूप तत्त्व की शरण पाने के लिए व्याकुल हो गये हैं। भोगों में अन्धकार ही अन्धकार पा कर अब जो ज्ञानमय लोक में चढ़ना चाहते हैं। अतएव मनुष्य अपने पुण्य कर्मों द्वारा चिनी हुई उद्दीप्त और सुरक्षित की हुई अन्दर की चित् अग्नि का आश्रय लेकर उसमें ही वास्तविक यज्ञ करने लगते हैं। अन्दर की अग्नि को भूल बाह्याग्नि में वड़े २ यज्ञ तो पितृयान वाले भी करते हैं, परन्तु ऐसे सच्चे यज्ञ रूपी शोभन कर्म वाले 'सुकृत' लोगों को ही वह देवयान नामक मार्ग इस भोग वाले संसार के अन्धकारमय आकाश में चमकता हुआ दिखाई देने लगता है। वही मार्ग "स्वः" को आत्म सुख का— आत्म ज्योति को प्राप्त कराने वाला है। यदि तुम को अभी भोग लिप्सा बाकी है तो तुम्हें अभी वह जगमगाता हुआ ज्योतिषमान मार्ग भी दिखलाई नहीं दे सकता। जब कि संसार के लिए आकर्षक और प्रथिनीय वड़े २ स्वर्गीय भोगों और दिव्य विभूतियों के भोग भी आत्म हीनता के कारण तुम्हें बिल्कुल बेकार निःसत्त्व जचेंगे। और यह आत्म प्रकाश शून्य भोग दायक लोक अन्धकार मय दीखने लगेगा। तब इसी अन्धेरे के बीच में सुवर्ण रेखा की तरह और फिर विद्युत लता की तरह अनन्त में चकाचौंध करने वाली अनन्तों सूर्यों के प्रकाश को भी मात करने वाली ज्योति की तरह वह देवयान या दिव्य प्रकाश तुम्हारे लिए उत्तरोत्तर बढ़ता जाए गा। तब भोग वादियों के लाख समझाने पर भी तुम्हें इन भोगों में राग नहीं पैदा होगा। अतः अभी ठहरो, अभी तो इतना याद रखो कि विषय भोग और ज्ञान बिल्कुल उल्टी चीजें हैं। भोग कामना की रात्री के बिना हटे ज्ञान-सूर्य का उदय नहीं हो सकता।

जब दो प्रेमी आपस में बिछुड़े हुए आपस में मिलते हैं। तो एक प्रेमी दूसरे से पूछता है सुनाओ, आप आनन्द से तो हैं? तो उस का उत्तर प्रायः यह होता है भाई! इस संसार में आनन्द कहां और फिर गृहस्थ में सुख कहां, आनन्द मिलेगा मरने के पश्चात अब तो कोई दिन ऐसा नहीं बीतता, कि जब कोई संकट विपत्ति न आई हो, भाग्य ही ऐसे हैं क्या करें? इत्यादि। क्या यह सत्य है? कि मनुष्य को सुख नहीं मिलता—और संसार में दुख ही दुख है। क्या यह संसार दुख रूप है? नहीं यह बात असत्य है। यह संसार न दुख रूप है न सुख रूप। मनुष्य अपने शुभाशुभ विचारों और कर्मों के द्वारा जैसा चाहे बना सकता है। संसार मनुष्य को वैसा ही दिखाई देता है जैसा उसका मन होता है।

तू भला सब जग भला—भला भला कर देखे।
तू बुरा सब जग बुरा—बुरा बुरा कर देखे॥

जब राजा युधिष्ठिर को राज तिलक लगाने का समय आया तो दुर्योधन से कहा गया कि सभा मण्डप में बैठे हुए व्यक्तियों में से आप निश्चय करके बतलावें कि कौन तिलक लगाने का अधिकारी है? तो उसने उत्तर दिया मेरी दृष्टि में तो सभा में कोई अधिकारी नहीं। अब युधिष्ठिर से कहा गया आप निश्चय करें। उसने कहा, कि सभा में बैठे हुए मेरे सभी पूज्य हैं मैं कैसे कहूं कि अमुक व्यक्ति अधिकारी नहीं है—प्यारे! मनुष्य अपना आप ही मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।

मनुष्य इस बात पर विचार नहीं करता और नहीं देखता है। कि यह सुख दुख जो मुझे जीवन काल में अनुभव हो रहा है यह मेरी आंतरिक अवस्था का

परिणाम है। मनुष्य जैसा अन्दर से होता है वैसा ही बाहिर बन कर आता है, यदि इस का अन्दर शान्त है। पवित्र है, तो इसका मुख शान्त और खिला हुआ होगा। यदि इसका भीतर (अन्दर) अपवित्र है तो बाहिर से कितना परिश्रम करे तो उसके मुख पर शान्ति और खिलखिलाहट नहीं आवेगी। मनुष्य का अन्दर बाहिर बीज और वृक्ष की भान्ति है। अन्दर बीज की भान्ति होता है, और बाहिर उसके फल फूल होते हैं। यह तो असम्भव है कि अन्दर का जीवन (बीज) धतूरे जैसा हो और बाहिर आम जैसा बन जाय। जो मनुष्य बाहिर के जीवन के दुःखों को अपने भाग्य या प्रारब्ध समझे हुए है या संसार को दुःख रूप प्रगट करते हैं। वह अपने अन्दर की ओर दृष्टि नहीं डालते उसका निरीक्षण नहीं करते वह यह अनुभव नहीं करते, कि जो दुख हमें बाहिर से मिल रहा है वह अपने अन्दर ही का फल है जो मनुष्य चाहते हैं कि उन्हें बाहिर के जीवन में सुख मिले, तो उनके वासते उचित है कि वह अपने जीवन का निरीक्षण करें, अपने अन्दर के जीवन के स्वामी बनें, उसे अपने वश में लाने का यत्न करें, बाहिर के जीवन में तो कहीं घर वालों का, कहीं मित्रों का, कहीं दूसरे लोगों का, कहीं राजा का, कहीं कानून का भी डर होता है, परन्तु अन्दर के जीवन को और कोई नहीं जानता और न देखता है इस लिये इस में रोक डालना इस में परिवर्तन करना बड़ा कठिन काम होता है। वास्तविक बात यह है कि जब तक अन्दर का जीवन शान्त नहीं बनता, अन्दर की पवित्रता नहीं होती, बाहिर के जीवन में सुख और शान्ति का होना असम्भव है। वह मनुष्य अपने माथे पर हाथ रख कर यों कहता हुआ रहेगा। मेरी किस्मत। यही उसकी

भूल वे समझी उस के दुःख का कारण सदा बनी रहेगी। मनुष्य के अन्दर के शत्रु हैं—भगवान कृष्ण ने गीता के अध्याय १६ श्लोक २१ में कहा है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मा देतत्त्रयं त्यजेत॥२१॥

कि काम क्रोध और लोभ तीनों नरक के द्वार हैं। नरक का दूसरा नाम है दुःख—प्रायः मनुष्य यह कहते हैं कि मरने के पश्चात नरक-स्वर्ग मिलेगा। परन्तु ऐसा समझना उनकी भूल है। जो मनुष्य यहां दुखी है वह नरक में है। दुखी वही होता है जो काम-क्रोध-लोभ में फंसा हुआ होता है। फारसी का कवि कहता है—

सह दरवाज़ाए दोजख अन्द ऐ जवां।

तमा हस्तो खशम हस्तो शहवत बदां॥

अर्थात—ऐ मनुष्य काम-क्रोध-लोभ यह दोजख के तीन दरवाजे हैं इन को छोड़ दे। कई मनुष्य अपने भाईयों-मित्रों और शत्रुओं और दूसरे लोगों को अपने दुख का कारण समझते हैं। ऐसा समझने वाले मनुष्य यदि आंतरिक दृष्टि से देखें तो उन्हें ज्ञात हो जायगा कि उनके सारे दुख का कारण अपना आप ही हैं। दूसरा न किसी को दुःख दे सकता है न सुख, और मनुष्य या अन्य वस्तुएँ तो केवल निमित बन जाती हैं। भगवान ने मनुष्य के अन्दर एक अद्भुत शक्ति रखी हुई है। परन्तु हरिण की भान्ति सुगन्ध तो उस की नाभि में है, परन्तु वह उसे ढूंढता बाहिर है। इसी प्रकार मनुष्य उनसे लाभ नहीं उठाता। वरना मनुष्य जो भी चाहें अन्दर की शक्तियों को जगाकर अपनी सोई हुई किस्मत को जागृत कर सकता है और सर्व दुखों से निजात

पा सकता है। अन्दर की शक्तियां एक ताला में बन्द है, जो मनुष्य पुरुषार्थ की चाबी ले कर उस ताले को खोलता है वह न केवल अपने दुःखों से निवृति पाता है किन्तु दूसरे के लिए भी एक बरकत बन जाता है, न केवल उसी से धन माल प्राप्त कर सकता है किन्तु ऐसी वस्तुओं को प्राप्त करता है जो इस के पश्चात अन्य किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती, अर्थात वह अपने परम परमात्मा को पा लेता है। जो आनन्द स्वरूप है—उसी आनन्द की प्राप्ति ही मनुष्य के जीवन का उद्देश्य है।

अब प्रश्न होता है कि अन्दर का जीवन कैसे ठीक बनाया जाय ?

उत्तर—अपने जीवन का लक्ष्य बनाओ, जिस प्रकार का जीवन बनाना चाहते हो। उस चित्र को अपने हृदय में खींचो, और उस प्रतिबिम्ब को अपने सन्मुख रखो, खाते-पीते, उठते-बैठते, जागते-सोते, चलते-फिरथे हर समय अपने सामने रखो, जो भी कार्य करो, देखो—किसी प्रकार से मेरे लक्ष्य को कमज़ोर करने वाला तो नहीं है। ऐसे २ कार्य करो जो के लक्ष्य की पूर्ति में सहायक हों जिस से हृदय की पवित्रता बढ़ती जावे. इस के साथ साथ बाहिर का जीवन सुखमय बनता जाय, इस चित्र से तुम्हारा वैसा चरित्र बन जाय। ऐसा करने पर आप को अनुभव होगा कि किस कदर आप को सुख और शान्ति प्राप्त हुई है।

अयां–रा–चि–ब्यां अर्थात—हाथ कंगन को आरसी क्या

निःसन्देह ऐसे मार्ग पर चलने से रुकावटें आती हैं कभी २ तो ऐसा अनुभव होता है कि बना बनाया चित्र मलिया मेट हो जाता है। ऐसी अवस्था हो जान पर उदास नहीं होना चाहिए। पूर्व संस्कारों के कारण ऐसा अनुभव होता है कि बना-

बनाया खेल बिगड़ गया, परन्तु घबराना नहीं चाहिये । अपने लक्ष्य पर डटे रहना, और शुभ भावना से शुभ कर्म किया हुआ अवश्य फल लायेगा । दृष्टान्त से समझें—

दृष्टान्त

न्योला जब सांप पर हमला करता है तो सांप न्योला पर वार करता है और सांप न्योला को डस लेता है, तो न्योला दौड़ कर—एक ऐसी बूटी होती है जिस पर वह जा कर लेटता है, तो सांप का विष नष्ट हो जाता है। फिर नया हो कर सांप के मुकाबले में डट जाता है,तो सांप उसे फिर डस लेता है, तो न्योला तत्काल जाकर बूटी पर लेट जाता है तो सांप का विष नष्ट हो जाता है, फिर वह तरोताजा होकर सांप पर हमला करता है इसी प्रकार कई बार सांप के डस लेने और बूटी से ताजा होकर वापिस मुकाबला करने पर सर्प के विष का कोष समाप्त हो जाता है, और न्योला सांप को अपने काबू में कर लेता है और विजयी होता है । अतः मनुष्य को इस बात पर अटल विश्वास रखना चाहिये, कि इसका बाहिर का जीवन अन्दर के जीवन पर निर्भर है, और यह भी मन में निश्चय रखे कि मनुष्य अन्दर के जीवन में परिवर्तन कर सकता है ।

एक भरंगी नाम का पतंगा होता है वह एक मक्खी को पकड़ कर उसे इतना डराता है कि मक्खी को हर समय उस से भय रहता है, फिर वह पतंगा उस मक्खी को अपने मिट्टी के घर में बन्द करके भिन-भिनाना आरम्भ कर देता है, मक्खी उस की आवाज सुनकर इतनी डरती है कि उसे सिवाय उस पतंगे की शक्ल के और कुछ दीखने में नहीं आता । परिणाम यह होता है

कि वह मक्खी थोड़े दिनों में भरंगी (पतंगा) ही बन जाती है। कहते हैं कि इस (भरंगी) पतंगे की वंश इसी तरह चलती है।

एक बार पूज्य पाद श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज से आर्य प्रेमियों ने प्रश्न किया कि महात्मा गांधी हिन्दु जाति की कुछ भी परवाह नहीं करते। निर्दयी बने हुए हैं। मुसलमान सारे पंजाब में हिन्दुओं को बरबाद कर रहे हैं। क्या यही महात्मा होते हैं? तो स्वामी जी ने उत्तर दिया—प्यारे! भारत में चालीस करोड़ की जन संख्या है—क्या सब का महात्मा गांधी ने ठेका ले रखा है? कोई और महात्मा हिन्दु जाति के वास्ते रक्षक बन कर क्यों नहीं निकलता? और कहा, महात्मा पुरुष अपने सामने एक लक्ष्य रख लेते हैं उसको पूर्ण करने पर तन-मन प्राण तक अर्पण कर देते हैं। वह दूसरी तरफ ध्यान नहीं देते, चाहे दुनियां कुछ कहती रहे। निन्दा करे, गिला करे, और कहा, महात्मा गांधी का लक्ष्य है स्वराज्य प्राप्ति, या भारत माता की स्वतन्त्रता, वह अंग्रेजों से यह कह रहे हैं कि भारत हमारा है—भारत—भारतवासियों को दे दो। चाहे हम को दो, चाहें मुसलमानों को दो। तुम चले जाओ। हम भाई आपस में निपट लेंगे। परिणाम स्पष्ट है कि उन्होंने स्वराज्य प्राप्त किया—पर कैसे प्राप्त किया?

अपने लक्ष्य की पूर्ति के वासते साधन अहिंसा और सत्य को अपने सम्मुख रखा, उस पर स्वयं आचरण किया, पर अटल विश्वासी बन कर, कितने संकट विपत्तियां आईं अनेकों वीरों और वीर देवियों ने अपने जीवन प्राण तक न्योछावर किये। यह तो संसारिक स्वराज्य था, पर आप चाहते हैं आंतरिक स्वराज्य, फिर इस के वास्ते किस कदर तप-त्याग-पवित्रता की आवश्कता होगी।

२—महात्मा बुद्ध ने अपना लक्ष्य केवल अहिंसा को रखा ? इसी के पालन करने में अपने आप को समर्पण किया, आज संसार भर में विख्यात है। सारा चीन जो संसार का इतना बड़ा देश है उसका पुजारी है। वर्तमान भारत भी उसका मान करता है।

३—भगवान राम ने अपने जीवन का लक्ष्य माता पिता की आज्ञा पालन ही को सम्मुख रखा, उसी के पालन में उसने अपने आपको समर्पण किया, परिणाम आज संसार बिना सोचे समझे हृदय से यही पुकार करता है कि संसार में राम-राज्य ही उत्पन्न हो जाये। और किसी के मुख से यह नहीं निकलता, कि भगवान कृष्ण का राज्य हो, या भगवान बुद्ध का, या ऋषि दयानन्द का, या गुरुनानक देव का राज्य हो—हालांकि भगवान राम के जीवन को लाखों वर्ष बीत गए, पर जितना संसार भर में भगवान राम का नाम रमा-किसी महापुरुष का नहीं रमा, किसी देश या मुल्क में या पहाड़ों की कंदराओं में या जंगलों में चले जायें, जहां भी हिन्दु जाति का लाल होगा-वहां ही भगवान राम का नाम उस के मुख से निकलेगा।

जो मनुष्य तन-मन-धन प्राण तक को श्रद्धा और अटल विश्वास से अपने लक्ष्य की पूर्ति अार्थ लगा देता है उसे अवश्य सफलता होगी, यह ठीक है कि लक्ष्य की सफलता प्राप्त करने में जन्म जन्मान्तर के कुसंस्कार आक्रमण करेंगें। परन्तु उनसे सावधान रहना पड़ेगा, चोर उस समय अपना दाओ चलाता है जब कि मनुष्य आलस्य, प्रमाद करता है। यदि जागृत होगा तो चोर दाव नहीं लगा सकेगा। इस प्रकार जो मनुष्य सदैव अपने लक्ष्य को सम्मुख रखेगा। तो बुरे विचार दुम दबाकर भाग जायेंगे। ज्यों-ज्यों अभ्यास बढ़ता जाएगा, सफलता चरणों में आती जाएगी।

अब प्रश्न होता है कि वह चित्र कैसा होना चाहिए। जिस को सदैव मनुष्य अपने सामने रखे-वह यूं —

मैं शुद्ध-पवित्र अमृत पुत्र हूँ मैं पवित्र पैदा किया गया हूँ। पवित्र ही मैंने रहना है। पवित्रता ही सुख का कारण है। जितने भी पवित्र मनुष्य संसार में हुये, जिन का नाम संसार में विख्यात है और संसार उनके नाम को पूजता है। मैं तभी सुखी रह सकता हूं यदि मेरा हृदय पवित्र हो। कोई भी ऐसा विचार मन में न लाऊंगा, न कोई ऐसा ही शब्द मुख से निकालूंगा, कोई ऐसा काम न करुंगा, जो मेरी पवित्रता में बाधक हो। प्रभु पवित्रता का स्वरूप है मैं उनके दर्शन तभी कर सकता हूं मैं उसकी अमृत गोद का वास तभी प्राप्त कर सकता हूं जब कि मैं पवित्रता का पुतला बन जाऊं-अन्दर-बाहिर एक रूप हो जाऊं। पवित्रता कैसे हो? फारसी का कवि कहता—

ख़ाही कि बशवद-दिल तू चूं आईना
दह चीज़ बेरु ने कुन,ज़े-दरुने सीना
बुखल[1] व हसद व जुलमें वहराम[2] व गैबत[3]
बुग़जो[4] तमा[5] व हिरसो[6] रिया[7] व कीना[8]

१. पवित्रता के बिना जीवन नय्या आगे नहीं बढ़ सकती, यदि जीवन को हम रेल समझ लें, तो पवित्रता उसकी पटरी है, जैसे रेल पटरी के बिना नहीं जा सकती ऐसे ही जीवन गाड़ी बिना पवित्रता के नहीं चल सकती। मन की शुद्धि, हृदय की

---

१. कंजूसी २. हराम खोरी ३. चुगल खोरी ४. दुश्मनी
५. लालच ६. बेजा ख्वाहिश ७. मक्कारी ८. बगले की भावना

पवित्रता से मनुष्य अपने लक्ष्य को पूरा कर सकता है। पवित्रता से उत्पन्न होता है—प्रेम।

२. प्रेम—मन का जितना विकास प्रेम से होता है शायद ही किसी गुण से होता हो, प्रायः लोग मोह को भी प्रेम समझते हैं। कामअंध-मोहअंध—प्रेमी नहीं हो सकता। प्रेमी वह होता है जो शत्रु से भी प्रेम करे, और प्रत्येक स्त्री को माता रूप समझे, जिस मन में गांठें हों उसमें प्रेम नहीं हो सकता। कहा भी है :—

"साजन प्रीति प्रेम की गन्ने से पहचान।
जहां गांठ तहां रस नहीं प्रेम भी ऐसा जान"॥

लोभी—स्वार्थी से प्रेम की तार टूट जाती है फिर टूटा हुआ प्रेम पहली अवस्था में कभी नही आता। एक हिन्दी का कवि लिखता है :—

साजन तागा प्रेम का, खेंचे से टुट जाए।
टूटा हुआ जो फिर जुड़े, गांठ बीच में आए॥

———

तागा टूटा फिर जुड़े, फूल टूटा कुमलाए।
दिल का टूटा न जुड़े, जो पाश २ हो जाए॥

———

सुख का जीवन प्रेम है, दुःख का मूल विरुध।
मूल पाप का बोझ है, मुक्ति का पथ बोध॥

———

जुग २ पावे कीर्ति, जुग २ पावे मान।
देश भक्ति में प्राण जो, करते हैं बलिदान॥

कठिन प्याला प्रेम का, पिये जो प्रभु के हाथ ।
चारों जुग जीता रहे, रहे प्रभु के साथ ॥

जिस घट प्रेम न संचरे, सो घट जान मसान ।
जैसे खाल लुहार की, सांस लेत बिन प्राण ॥

प्रभु चाहे था न चाहे, मैं तो प्रभु का दास ।
प्रभु रंग रत्ता फिरूं, जग से रहूं उदास ॥

प्रेम उसका नाम है कि किसी से भी द्वेष न करे । प्राणी मात्र की सेवा के लिये तैयार हो और सब से सहानुभूति हो, उसमें तेरा मेरा पन न हो ।

"रानी और मोती का सम्वाद"

रानीः—आठ पहर चौंसठ घड़ी, मेरे मुख रहता तू ।
मैं तुझ से कहूँ ऐ मोती, बात न करता तू ॥
मोतीः—सुख कारण सागर तजे, आन बंधायो अंग ।
मैं इस विध चुप रहूँ, तू करती नित कुसंग ॥
जौहरीः--जब चेरी लाई धनी, तैं तिनक न मानी आन ।
मैं हाथ पकड़ आसन धरा, तैं किस विध तजे प्राण ॥
मोतीः--मैं मोती रानी मुख का, तू क्या लोभ अज्ञान ।
जात जान न कीमत देनी, मैं इस विध तजे प्राण ॥
जौहरीः तू मोती रानी मुख का, मैं मूर्ख अज्ञान ।

ऐसी विधि बताए, तेरे जीवित हों प्राण ॥

उत्तरः—मन मोती और दूध का, तीनों को एक स्वभाव ।

फाटे पीछे न मिलें, कर ले लाख उपाय ॥

३ नम्रता—अहंकारी मनुष्य संसार में शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता । अहंकारी मनुष्य सूखी लकड़ी या सूखे गारे के समान होता है । जिस तरह सूखी लकड़ी किसी तरफ झुक नहीं सकती । न खुश्क गारा ईंटों को मिला सकता है इसी प्रकार से अहंकारी मनुष्य का मन किसी अच्छी तरफ झुक नहीं सकता, और कोई अच्छी बात वह ग्रहण नहीं कर सकता । अहंकारी मनुष्य अपने आप को ऊँचा, बड़ा समझता है परन्तु उसकी बढ़ाई होती है जिस प्रकार एक पतंगा उड़ता हुआ अपने आप को वृक्षों और पहाड़ों से ऊँचा समझता है परन्तु उसे यह पता नहीं कि उस की अपनी जड़ कुछ भी नहीं, उसने दो मिन्ट में भूमि पर आ रहना है । बढ़ाई वह नहीं होती; जो मनुष्य अपने मुंह से कहे—बड़ाई वह होती है जो दूसरे दें—जिस की दूसरे प्रशंसा करें । जो महान आत्मा होती हैं वह इस बात की परवाह नहीं करते कि दूसरे उसे बड़ा कहते हैं या छोटा । बड़ा बनने का साधन छोटा बन जाना । नन्हे बच्चे की न्याईं । नम्र-सुशील स्वभाव । नम्र मनुष्य की जीवन नैया को चारों ओर से सहायता मिलती है । वह ही परमात्मा का साक्षात कर सकता है । कवि ने कहा है—

ऊंचे पानी न टिके—नीचे में ठैराय ।

नीचा हो तो भर पिये—ऊंचे प्यासा जाय ॥

मन्ज़ूर है दुनिया में अगर हिम्मते आली ।
कर गरदने तसलीम को खम ज्यादा ॥

———

लेते हैं समर शाख़ समरवर को झुका कर ।
झुकते हैं सखी वकते कर्म और ज़्यादा ॥

———

दिल के आईना में है तसवीरे यार की ।
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली ॥

———

दुश्मनों से दोस्ती, गैरों से यारी चाहिये ।
ख़ाक के पुतले बने, तो खाकसारी चाहिये ॥

———

आपा मिटे हर भजे, तन-मन तजे विकार ।
निर वैरी सब जीव सों, दारु यह मत सार ॥

———

हार चला सो हर भक्त, और वाद करे सो नीच ।
रजब कोठी गार की, धोहे इतनी कीच ॥

———

स्वार्थी मनुष्य सत्य को सुन नहीं सकता । और अहंकारी मनुष्य परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता ।

सर झुका देते हैं सब हुक्मे खुदा के सामने ।
शाह तक मजबूर होते हैं फ़ना के सामने ॥

पड़े भटकते हैं लाखों पण्डित, करोड़ों दाना, हजारों स्याने ।
जो खूब देखा तो यार मैं ने, खुदा की बातें खुदा ही जाने ॥

पल विच नदियां नीर बहावन, पल विच कर दे रेत के थल ।
डरदा रहे उस प्रभु तूं, करता लावे घड़ी न पल ॥

---

४ गुण ग्राहियता—जो मनुष्य अपने को पूर्ण समझता है । अपने सिवाय बाकी सब को तुच्छ समझता है उसकी जीवन नैया भी रुकी रहती है संसार में कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं जिस में कोई न कोई गुण न हो । हमें सदैव गुण ग्राही होना चाहिये । गुण कहीं से भी मिले, उसे ले लेना चाहिए । उस के दोषों-अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिये । न ही उनको प्रगट करना चाहिये । जो दूसरों के दोषों को प्रगट करता रहता है उस के अन्दर भी वही दोष आ जाते हैं । और जो दूसरों के गुणों को देखता और प्रगट करता है उस के अन्दर वह गुण आ जाते हैं । इसी वास्ते कहा गया है, कि परमात्मा का ध्यान करो । उस का चिन्तन करो, क्योंकि वह सर्व गुण सम्पन्न है । जब हम भगवान का ध्यान करेंगे और उसके गुणों का वर्णन करेंगे । तो वह गुण हमारे अन्दर आ जावेंगे । हम कभी किसी के मकान पर जायें, तो उसके अच्छे कमरों को देखना चाहिये, उस की टट्टियों को नहीं, जब हम किसी बगीचे में जायें, तो फूलों की सैर करनी चाहिये, न कि खाद और कूड़े करकट की ।

कवि लिखता है—

कमीने की कभी खू, ए, शराफत आ नहीं सकती ।

न शाखे तुख़म हनज़ल में, हो पैदा लुतफ सन्दल का ॥

इतनी ही दुश्वार अपने ऐब की पहचान है।
जिस कद्र करनी मलामत और को आसान है॥

हम किसी को क्यों कहें; मुंह से बुरा अपने ज़फर।
हम ही सब से हैं बुरे, हम से बुरा कोई नहीं ॥

इतर को मिट्टी में मिलाकर, भी महक जाती नहीं।
तोड़ भी डालो तो, हीरे की चमक जाती नहीं ॥

एक विशेष बात की ओर आपका ध्यान रखना चाहता हूँ। वह यह कि ज्यों २ मनुष्य की आयु बढ़ती है त्यों २ उसके हाथ पांव कमजोर होते जाते हैं और शेष अंग भी ढीले होते जाते हैं। इसके अतिरिक्त आंतरिक शक्तियां भी निर्बल होती जाती हैं। धीरे २ फिर वह ऐसी अवस्था को पहुँच जाता है कि अब वह आंतरिक जीवन में भी परिवर्तन नहीं कर सकता। जिसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य जो जवानी अवस्था में अपने चित्र को बुरा बना बैठा था अब वह अधिक पुख्ता होना आरम्भ हो जाता है। जवानी को हैवानी के नशा में, विषय विकारों का ग्रास बनाकर खो देता है। अब जब वृद्ध अवस्था आ जाती है। तो उसके लिए यह असम्भव ही है कि यदि उसको जवानी अवस्था में क्रोध की बुरी आदत थी जब कि उसे जवानी अवस्था में क्रोध आता था तो किसी को दुर्वचन बोलता और किसी को मार पीट

कर लेता उसके पश्चात बड़े गर्व अभिमान से कहता कि मेरा हृदय अब ठंडा हो गया है।

२—जो मनुष्य मोह के वश में हो जाता है तो उसके किसी मित्र सम्बन्धी का स्वर्गवास हो जावे और वह चुप चाप बैठ जावे, तो उस के वास्ते यत्न किया जाता है कि यह किसी न किसी तरह रोये ताकि इस का मोह अन्दर से निकल जावे, यद्यपि मार पीट करना, न ही रोना कोई भला काम है किन्तु ऐसा करने से आंतरिक चरित्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

निस्सन्देह—कि इस के जोश निकल जाने पर उस का हृदय कुछ हल्का और शान्त हो जाता है। वृद्ध अवस्था में मनुष्य में लड़ने भिड़ने की शक्ति तो रहती नहीं, न किसी की वस्तु छीन कर लाने से लोभ का नाश होता है। परिणाम यह होता है कि वह जोश अन्दर ही अन्दर रहता है। कहावत है—

"मर्द चूं पीर शवद—हिर्स तेज़तर गर्दद"।

अर्थात—ज्यों २ वृद्ध अवस्था आती जाती है लोभ की शक्ति बढ़ती ही जाती है। इस का परिणाम कि लोभ फिर तृष्णा का रूप बन जाता है, और क्रोध-दांत पीसने। आंखें लाल करने, और अन्दर ही अन्दर बल जलता-घुलता रहता है, इस प्रकार मोह की मात्रा भी अधिक बढ़ जाती है, ऐसे मनुष्य का बाहिरी जीवन अति बुरा और दया के योग्य ही बन जाता है। इसी का दूसरा नाम 'सत्तरा-बहत्तरा हो जाना होता है, फिर वह नाना प्रकार की घटिया क्रीड़ायें करता है अब यह किसी व्यक्ति को गाली-गलौच तो कर नहीं सकता, उबाल हृदय में अवश्य उठता है, फिर वह घर वालों पर, विशेष रूप से स्त्रियों पर बीवी-बेटियों, बच्चों पर बरसता है। परिणाम यह होता है कि वह बातें सुनकर

सहन नहीं कर सकतीं और फिर सेवा हृदय से नहीं करतीं यह उन से ज्यादा बिगड़ जाता है। यह अपने लिये नयी विपत्ति खड़ी कर लेता है आखिर कुत्तों की मौत मरता है।

अब यदि आप चाहते हो, कि हमारा भावी जीवन सुख शान्ति से व्यतीत हो और हमारी सन्तान वृद्ध अवस्था में हमारी इन बुरी आदतों को देख कर हम से घृणा न करें, बल्कि सेवा करें। वृद्ध अवस्था में हमें दांत न पीसने और सर्प की तरह से दिल में बल न खाने पड़ें, तो उचित है, कि जवानी में हम अपने आँतरिक जीवन का चित्र ठीक तैयार करें।

प्यारे! वर्तमान युग के युवक ऐसे सत्संग और उपदेश की बातें सुन कर संतुष्ट न हो कर उल्टा जोश में आ कर कहते हैं कि आप क्रान्ति वाली बातें सुनाओ। यदि उनको यह उपदेश सुनाया जाये, कि अमुक व्यक्ति से मत दबो, अमुक सम्प्रदायों पर अपना अधिकार जमाओं। तुम शेर हो, शेरों की सन्तान हो। शेष सब भेड़ें हैं। इन को चट कर जाओ। नाश कर दो-तुम ही राज करने के अधिकारी हो। इत्यादि। ऐसी बातें सुनकर बहुत प्रसन्न होते हैं। ऐसे लैक्चर के पश्चात कोई और लैक्चरार या उपदेश-शान्ति प्रेम भाव भ्रात्री भाव-नम्रता और उदारता-श्रद्धा बढ़ाने की बातें सुनावें। तो बड़े लोग दुखि हो कर लैक्चर देने वाले पर अति क्रोधित हो जाते हैं और गाली तक सुनाने को तैयार हो जाते हैं। कहते हैं कि इसने बना बनाया हमारा काम बिगाड़ दिया। वह यह समझते हैं कि बस इस एक लैक्चर के सुन लेने पर हम राष्ट्रपति बन गए। परन्तु इस शान्ति के उपदेश ने हमारे सर से ताज उतार दिया। इसी प्रकार के मिर्च मिसाले लगा कर बातें सुना कर हृदय में जोश दिला कर अपनी वाह २ करना चाहते हैं ऐसे लैक्चरार का फल देखिये।

आप बीती

मेरी जन्म भूमि में आर्य समाज थी,वार्षिकोत्सव हुआ करता था। परन्तु कुछ कारणों से चार-पांच वर्ष तक फिर वार्षिकोत्सव न हुआ, अब नवयुवकों के हृदय में उत्साह जागृत हुआ। जोश भर आया, तो उत्सव करना निश्चय किया गया, और उत्सव की तैयारी बड़े लगन से आरम्भ की गई। और विज्ञापन छपवा कर ग्राम २ में बांटे गए, और लंगर का प्रबन्ध भी अच्छा और श्रद्धा से किया गया। और सभा से उपदेशक तथा भजनीक भी बड़ी संख्या में पधारे और ग्राम २ से काफी जनता आई। उत्सव की शोभा अधिक हो गई। विद्वानों और भजनीकों ने बड़े प्रेम और भ्रात्री भाव के लैक्चर-उपदेश भजन सुनाए, जनता गद् २ प्रसन्न थी, तीसरे दिन रविवर प्रातः अपील होनी थी। उत्सव पर आने वाले प्रेमियों ने दिल खोल कर अपील में धन देने के लिये धन संग्रह करना आरम्भ किया। ग्राम २ के लोग अपने धन की थैलियां बना कर उत्सव मंडप में आ गये। हर एक सज्जन उत्सव के कार्य कर्म से संतुष्ट और प्रफुल्लित था। समझो, राम राज्य ही बना हुआ था। सनातनी, सिक्ख, मुसलमान सब जनता प्रसन्नचित्त एकता की लड़ी में परोयें हुए थे। अब जब कि पंडाल में उत्सव की कारवाई आरम्भ हुई। तो जोरा से उभरे हुए नौजवानों ने पण्डित जी से प्रार्थना की। कि महाराज! जैसा उत्सव अब के बार हमारा हो रहा है ऐसा कभी भी नहीं हुआ और ग्राम २ से जनता आई हुई है और अधिक संख्या सनातनियों-मूर्ति पूजकों की है आज आप मूर्ति खण्डन और मृतक श्राद्ध और शिव लिंग का खण्डन करें, पर बड़े जोश से ताकि प्रचार का प्रभाव खूबहो।

सज्जनो! प्रायः वर्त्तमान के विद्वान कहने में तो शास्त्रार्थी

कहलाते हैं। वास्तव में यह शस्त्रार्थी हैं। जहां पर एकता होगी। प्रेम प्रीति-सहानुभूति होगी। शस्त्र-अर्थी अपना शस्त्र चला कर राम राज्य को रावण राज्य-दुर्योधन राज्य बना देंगे। क्योंकि एकता और शांति होने से इनके शस्त्र की पूजा फिर कैसे हो? जरा नहीं विचार करते और सोचते, कि संसार कहां जा रहा है? अनाधिकारी होते हुए अधिकारी बन जाते हैं, भगवान दयानन्द जी महाराज ने जो इन लोगों को अपने करने की बातें जो बतलाई थीं और सत्यार्थ प्रकाश में लिखी थीं। यह वह न करेंगे। और न किसी को करने का उपदेश करेंगे। किन्तु जो काट-छांट खंडन की बातें लिखी हैं जिनके कहने के अधिकारी यह स्वयं नहीं, प्लेट फार्म पर चढ़कर गर्ज कर खंडन करते हैं। राम राज्य को दुर्योद्धन राज्य बना कर अपना हल्वा-माडा से पेट भर कर रफू चक्कर हो जाते हैं। और पीछे फिर महाभारत का युद्ध आरम्भ हो जाता है।

अब शास्त्रार्थी कहलाने वाले पण्डित महोदय फूले नहीं समाते, खडे हो गए। शास्त्रार्थ की बजाय शस्त्रार्थ का चलाना बड़े जोश से आरम्भ कर दिया। और नवयुवक समाज प्रसन्न चित्त होने लगे। अब ज्यों ही लोगों ने मूर्तिखण्डन-श्राद्धखण्डन का उपदेश सुना, तत्काल मण्डप से उठ कर चल पड़े और जो धन संग्रह कर थैलियां अपील में देने को लाए हुये थे, एक दूसरे को वापिस बांट कर देने लगे। और अति व्याकुल होकर ग्रामों को चल पड़े, और शहर में जो पहले राम राज्य था अब महाभारत का युद्धबनगया। यह कैसे? सुनिये—

मैं मुलतान में आर्य अनाथालय का सुपरिटेण्डेण्ट था। पूज्य पाद श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज आर्यसमाज गुरु

कुल विभाग बुहड़ दरावजा में पधारे। मैंने चरणों में नत मस्तक होकर नमस्कार किया, तो स्वामी जी ने मुझ से पूछा। सुनाओ तुम्हारी जन्म भूमि की समाज की अवस्था कैसी है ? मैं ने कहा महाराज ! मैं छः मास से यहां पर हूं तो स्वामी जी ने श्री स्वामी भजनानन्द जी, (जो उस समय निकट बैठे थे,) उनको संकेत करते हुये कहा सुनों ! स्वामी भजनान्द ! आप को इनकी जन्म भूमि की समाज की अवस्था सुनांऊ, और कहा कि मुझे बर्ष के वर्ष बुलाया जाता था। मैं वर्ष भर में पांच छः दिन इनकी समाज को दिया करता हूँ।

इस वर्ष इनकी समाज का उत्सव हुआ। उत्सव बहुत वर्षों के पश्चात् हुआ था। नवयुवकों ने बड़े उत्साह से काम किया था। उत्सव कार्य को कराने वाले विद्वान, उपदेशक, भजनीक भी काफी संख्या में पहुंचे। और वहां शहर में राम राज्ज था। और उत्सव देखने के वास्ते ग्रामों की जनता आई। और बहुत प्रसन्न चित्त हुई। अन्तिम दिवस नवयुवकों ने शास्त्रार्थी पंडितजी से कहा, कि अपील होने से पहले-पहल आप मूर्ति पूजन और श्राद्ध खंडन पर बड़े जोर दार शब्दों में उपदेश करें। अब शास्त्रार्थी को समय मिल गया, लड़ने वाले तो लड़ाई चाहते ही हैं। क्योंकि उनकी आदत कैसे पूरी हो ? और फिर पेट पूर्ति भी तो करनी है। एकता से क्या मिलेगा। अब पंडित जी प्लेट फार्म पर पधार कर खूब मूर्त्ति खंडन, श्राद्ध खंडन, करने लगे। अधिकतर संख्या सनातनी जनता की थी। ग्राम के लोग भोले भाले होते हैं। पर श्रद्धालु त्याग और सेवा भाव के और सीधे साधे होते हैं। विश्वास शक्ति उन में इतनी होती है। जो वर्त्तमान के विद्वानों में नाम मात्र। वह भी दुर्लभ, उन्होंने आज के दिवस अपील में

धन की थैलियां भेंट करनी थीं। जो ग्राम ग्राम के लोगों ने संग्रह कर रखी थीं। अब जब शास्त्रार्थी महोदय का उपदेश सुना तो मानो किया कराया सारा कार्य मिलया मेट हो गया। सभी लोग पंडाल से खड़े हो कर चल पड़े। और थैलियों का रुपया संग्रह कर देने को लाये थे उन को खोल कर एक दूसरे को लौटा कर अपने २ ग्राम को चलते बने। और सारे शहर में अब दो पार्टियां बन गई मानो अब महाभारत का राज्य हो गया। और कहा—इन उपदेशकों ने ज़रा भी न विचारा, न सोचा, कि अब समय कैसा है? किस प्रकार के प्रचार की अवश्यकता है। जगह २ पर लट्ठ बाजी! अब बीज तो बो गए शास्त्रार्थी विद्वान और फल भुगतना पड़ा मुझे, वह कैसे? सुनिए!

अब मैं जब गया, तोधर्म शाला में पहले की तरह उपदेश का प्रबन्ध किया गया, तो मैंने देखा, जहां पर सनातन धर्मी सिक्ख-मुसलमान इत्यादि बड़ी श्रद्धा और बड़ी संख्या में आते थे और श्रद्धा से उपदेश सुनते थे अब थोड़े से केवल आठ दस नवयुवकों के दूसरा कोई नहीं तो मैंने खड़े हो कर जब उपदेश आरम्भ किया, तो एक तरफ से घंटे घीड़याल बजने लगे दूसरी तरफ लड़कों ने मिल कर शोर मचाना आरम्भ किया, और एक तरफ से ईंटें-पत्थर आने लगें। और कहा यह है आजकल के उपदेशकों प्रचारकों का प्रचार-उसका परिणाम। और कहा देखो-एक बालक के हाथ में चाकू है और हम जानते हैं कि इस चाकू से बालक का हाथ कट जायेगा। अब यदि खींचते हैं तो वह रोता है। तो कैसे करें, तो अब ऐसा खेल खेलें, कि बालक चाकू भी छोड़ दे, और हंसता भी रहे, वह यूं करें, एक उत्तम खिलौना बच्चे के सामने धर दें, तो वह चाकू छोड़ देगा और खिलौना देख

कर उठाकर हंसता भी रहेगा। यह था तरीका प्रचार का, परन्तु आजकल यह तो गर्ज कर दूसरों को कहेंगे। यह छोड़ दो परन्तु बदले में देंगे कुछ नहीं। भला यह दें भी क्या? जब पल्ले में कुछ नहीं। यह तो लेना ही जानते हैं। भला कभी लेने वाले की भी पूजा-मान प्रतिष्ठा होती है। लेने वाला तो बोझा उठाता है जैसे पशु बोझ उठाते हैं। और देने वाला दाता कहलाता है वह बोझ रहित होता है वह आकाश लोक को प्राप्त करता है दुनिया उसी का ही मान तथा प्रतिष्ठा करती है। अब जब सिर बिगड़ जाय, तो बाकी अंगों का खुदा ही हाफिज। अब समाजों की अवस्था देखो, भिखारी बनी हुई हैं। अब ब्लैक की कमाई मिले, या चोरी की, घूंस खोरी की, डाका ज़नी की, शराबी, दुराचारी की, कहीं से दाम मिले, तो वहां पर हाथ पसारेंगे, ऐसी पाप और दुष्टता की कमाई संग्रह करने वाला पापी, और इस कमाई को खाने वाले इस से अधिक पापी, फिर धर्म राज्य और वेद माता आर्य्य समाज कैसे पवित्र हो? वेद का प्रचार कौन करे? अब समाजों में शराबी, जुआरी, घूंस खोरी, मांसाहारी जो भी आवे, फार्म मिम्बरी का भर दे, और दो चार आने चन्दा मासिक दे दें समाज का मेम्बर और प्रधान मन्त्री बन जावे।

मन तुरा हाजी बगोयम्।
तू मरा मुल्लां बगो॥

अर्थात मैं तुझे हाजी कहूँ, तू मुझे मुल्लां कहे, कि तरह संसार को आर्य्य बनाने के ठेकेदारों की अवस्था है, भगवान दया करे, अब वह कोई तेजस्वी, प्रतापी, धीर, गम्भीर, महान आत्मा को फिर से भारत में भेजे, जो इस बिगड़ी का संवार-सुधार करे। वर्तमान नव युवकों की यह भारी भूल है, वह नहीं समझते

कियुवा अवस्थामें हृदय में शांति-राजय में शांति और प्रेम सहानुभूति का कोष संग्रह न करने का यह परिणाम होगा कि वृद्धा अवस्था में हमारा जीवन कष्ट व दुःख का सा व्यतीत होगा। मैं तो समझता हूँ कि वर्त्तमान भारत वासियों की आयु इसी कारण से कम है। क्यों, इस झूठी और बिना बजा क्रान्ति के भाव से अन्दर ही अन्दर घुल कर जलदी ही इनका राम नाम सत बोला जाता है। मैं यह नहीं चाहता और न कहता हूँ कि क्रान्ति बुरी वस्तु है परन्तु क्रान्ति शान्ति के साथ ही होनी चाहिये। खुमार के साथ विचार होना चाहिये। शक्ति-भक्ति के साथ होनी चाहिये। जोश-होश के साथ होना चाहिए।

ओ३म् यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्रदेवाः साग्निवा ॥२५॥

यजुर्वेद अध्याय २० मंत्र २५ में लिखा है। कि जिस मनुष्य या देश में ब्राह्मण शक्ति और क्षत्री शक्ति मिल कर दोनों साथ २ चलती हैं वह मनुष्य या देश भाग्य शाली बन जाता है।

जैन शास्त्र में एक स्थान पर प्रश्न किया गया है। कि हम कैसे चलें ? कैसे बैठें, कैसे सोयें, और कैसे काम करें, तो वहां पर उत्तर दिया गया है। कि विचार कर बैठो, विचार कर चलो, और विचार कर सारे काम करो। महात्मां विदुर ने जब धृतराष्ट्र को यह शुभ सम्मति दी कि तुम अपने बेटों और अपने भतीजों का जो युद्ध होने वाला है उस को रोको, वरना अति हानि होगी। भतीजों का जितना अधिकार है उनको दे दो, पर यह बात सुनते ही दुर्योधन को जोश आ गया। तो उसने विदुर का वाणी से तिरस्कार किया, और अपमान किया, इस पर महात्मां विदुर ने कहा, राजा ! मेरे पास ब्रह्म तेज और क्षात्र बल दोनों साथ ही साथ हैं इस

वास्ते तुम मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकते। अर्थात:-कि मैं तुम्हारी तरह अंध जोश में नहीं आऊंगा, हां समय ने यदि क्षात्र बल दिखाने को बाधित कर दिया तो फिर मैं चूकूंगा नहीं, किसी घमंड अभिमान में न रहना। अपनी जबान को लगाम दो, नहीं तो परिणाम अच्छा न होगा ! अन्दर के चित्र बिगाड़ने वाले ईर्षा, द्वेष, तासुब, मक्कारी, चुगल खोरी, बदले की भावना। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार इत्यादि हैं। इन से बच कर भ्रात्री-भाव प्रेम सहानुभूति, त्याग, उदारता, पवित्रता, सद्गुन ग्राही होना आचार विचार, सदाचार का शुद्ध होना. प्रिय मधुर भाषी होना अन्दर के चित्र को बनाया जावे। जिस से बाहिर का जीवन अति सुखदाई, कल्यान कारी, शांति दायक होगा, फिर कोई भी ठोकर न लगेगी, और न कोई दुःख होगा। वृद्ध अवस्था सुख शांति की बीतेगी। परलोक सुधर जायेगा। भगवान की प्राप्ति होगी। इस बात को याद रखना कि जिस का यह लोक ठीक नहीं उसका परलोक कभी ठीक नहीं हो सकता। जो मनुष्य, मनुष्य नहीं बना, वह देवता महात्मा ऋषि कैसे बन सकता है ? पहले हमें शुद्ध आहार, शुद्ध विचार, शुद्ध व्यवहार, और शुद्ध आचार से अपने जीवन का सफल बनाना चाहिये, मानो धर्म ही सब धर्मों की नीव है।

तुलसी सीधी चाल से, प्यादा हुए वज़ीर।
फर्ज़ी शाह न हो सके, गत टेढ़ी तासीर॥

दिल का आईना, जब सफा देखा।
वह जो पिन्हा था, बरमला देखा॥

न सुनो गर, बुरा करे कोई ।
न कहो गर, बुरा करे कोई ॥

चाहे कि अक्से दोस्त रहे, तुझ में जलवा गर ।
आईना वार दिल को रख, अपने सफ़ा परस्त ॥

कर के साफ आईना, दिल उस में तू देख आप को ।
बख्शेगा ए-यार, तेरा ही तुझे दीदार फैज़ ॥

हज़ार बार जो मांगा करो, तो क्या हासिल ।
दुआ वही है जो, दिल से कभी निकलती है ॥

प्रार्थना

हे कृपा सिन्धु-शान्ति स्वरूप—प्रेम और आनन्द की वर्षा करने वाले, तेरी शरण में आया हूँ । तेरे सद्गुणों का अब मैं मन में चिन्तन करता हूँ । जिस से मेरा अन्दर का चित्र सुन्दर और सावधान बन जावे, मुझे किसी से घृणा न हो, किसी से द्वेष न हो । जिस किसी को फलता फूलता देखूं गद् गद् प्रसन्न होऊँ । किसी की वीरता और किसी को ऐश्वर्यवान देखते ही मेरे हृदय की कली खिल जावे । यही भाव करूं कि इस प्यारे ने शुभ कर्म किये का फल प्राप्त किया है । जिस का यह फल भोग रहा हूं । और मैं किसी की बुराई को न देखूं । हां अपने अन्दर के चित्र पर कड़ी दृष्टि रखूं कि इस पर कोई काली लकीर या धब्बा न पड़ जाय । मैं अपने मन की चिमनी पर मैल या कालक न जमने दूँ । ताकि अन्दर के चित्र की चमक में अन्तर न पड़ जावे । यह

मैं भली प्रकार जान गया हूं कि बाहिर जो मुझे दुख या सुख होता है। वह मेरे अन्दर के चित्र के अनुकूल होता है।

प्रभु देव कृपा करो, आप की पवित्रता और प्रेम के गुणों का ध्यान करने से मेरा अन्दर का चित्र अति सुन्दर आकर्षित करने वाला बन जावे, जिस से मेरे निकट कोई दुख संकट न आ सकें। दुख वहां होता है जहां ठोकर लगे, ठोकर वहां लगती है जहां अन्धकार हो, जब मेरे हृदय में तेरा प्रकाश ही प्रकाश हो जायेगा। बस फिर प्रेम ही प्रेम है। प्रभु! आप धन्यहो अब ऐसी कृपा करो, कि यह चित्र ऐसा सुन्दर लेकर आप की चरण-शरण पहुँचूं। ओ३म्—शान्ति—शान्ति—शान्ति।

ओ३म् अभी षु णः सखी नाम बिता जरितृणाम्
शतं भावस्यु तिभि ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ४ सू० ३१ मं० ३

भावार्थ—जो मनुष्य अपनी आत्मा के सदृश सुख-दुख हानि और लाभ को औरों को भी जान कर दूसरे के प्रिय के लिये वर्ताव करें उन में अज्ञ जन भी मित्रता करें।

वह महान् आत्मा (आप्त पुरुष) है जो अपनी आत्मा के समान दूसरे का सुख चाहता है यदि मैं चाहता हूं कि दूसरे मेरे साथ भला वर्ताव करें मेरा मान करें तो मुझे वही व्यवहार उसी प्रकार से दूसरों के प्रति करना चाहिये, इस का परिणाम सुन्दर होगा। अतः हम दूसरे के द्वारा जो व्यवहार जिस काल में जिस ढंग से अपने प्रति होना पसन्द नहीं करते उसे दूसरों के प्रति उसी ढंग से वैसे ही समय में कभी भी नहीं करना चाहिये, उसे करने का फल हानि कारक ही होगा। इस नियम के धारण कर लेने पर निर्णय होने में न तो देर कभी लगेगी। न कभी भूल ही होगी। अब विचार कर देखें हम चाहते हैं कि

सभी सदा सब बातों में हम से सत्य बोलें, कोई व्यक्ति कभी किसी प्रसंग में हम से झूठ न बोलें। लेन देन में सभी हम से सच्चा व्यवहार करें। साग-सब्जी बेचने वाले हमें सच्चा भाव बतावें। पूरा तोलें, फल बेचने वाले अच्छे फल दें, ठीक २ दाम लें, मोदी सभी वस्तुएँ अच्छी दे, और उचित दाम ले, कोई भी हमें तनिक न ठगे, सभी हम से सरल व्यवहार करें, कोई हम से कपट न करे। हम ऐसा चाहते हैं या नहीं ! कोई भी यदि कभी किसी प्रसंग में झूठ बोलता है, हमें ठगता है, हम से कपट करता है तो हमें बुरा लगता है या नहीं ! तो बस दृढ़ता पूर्वक व्रत लेकर हम भी यह करें कि सदा सभी बातों में सब से सत्य बोलें- सब के साथ सच्चा व्यवहार करें, किसी को कभी न ठगें, हमारा सब के प्रति सरल व्यवहार हो किसी के प्रति कपट न करें।

हम चाहते हैं कि सभी जगह हमें सबके द्वारा अधिक से अधिक शारीरिक सुविधा प्राप्त हो, कोई भी हमें कभी शारीरिक कष्ट न दे, हम जहां जायें वहीं अमृत भरी वाणी से हमारा स्वागत हो, सब की वाणी में हमारे प्रति आदर भरा हो, प्रेम भरा हो, कोई भी हमें कटु वाणी न कहें, हमारा चित्त न दुखावें, मन से सभी हमारा मंगल चाहें, हमारे लिये शुभ चिन्तन करें, कोई हमारा अनिष्ट न सोचे' बस ठीक इसी प्रकार हमें भी चाहिये कि हमारे में आने वाले प्रत्येक प्राणी को अधिक से अधिक शारीरिक सुविधा दें, किसी को भी हमारे द्वारा कष्ट न पहुँचे, जो भी हम से मिले उन के लिए हमारी वाणी से मधुर ही, मधुर भरा हो, उनके साथ वार्तालाप करने पर हमारी वाणी में आदर-प्रेम झरता रहे। किसी के प्रति भूल कर भी कटु वाणी का प्रयोग न करें, कड़वी बात कह कर किसी का दिल न दुखावें। मन में सभी के लिये मंगल सोचें, सभी के लिये शुभ कामना करें, भूल कर भी किसी

का अमंगल—अशुभ—अनिष्ट होने की इच्छा न करें। हम पर जब विपत्ति आती है कोई कष्ट आता है उस समय इच्छा होती है कि सभी हमें हृदय से लगालें। सभी हाथ बढ़ाकर हमारे आंसू पोछें, हमारे पास जो वस्तुएँ नहीं हैं, उनकी पूर्ति कर दें, उस समय कोई हमारी अपेक्षा न करें, जब हमें ऐसी इच्छा होती है, तब हमारे जीवन का भी यही व्रत होना चाहिये कि किसी को संकट विपत्ति में देखकर विशेषतया जिस की संभाल करने वाला कोई न हो, उसे हम अपने हृदय से लगा लें। उसके आंसू पोछने की यथासाध्य चेष्टा करें, उसके जो अभाव हैं यदि हम उसे पूरा कर सकते हैं तो अवश्य पूरा कर दें, ऐसा कोई भी व्यक्ति ध्यान में आने पर हम उसकी उपेक्षा न करें।:—सरांश यह कि जब तक हमें सर्वत्र भगवत-भावना नहीं होने लगती, तब तक हमें पर नियमों का बन्धन है। और इसी लिये सावधान हो कर ऊपरयुक्त कसौटी पर अपनी चेष्टाओं को कस कर ही व्यवहार में उतरना चाहिये। पर इतने से ही हम भगवान के आलोक में जा पहुचेंगे? ऐसी बात नहीं है, इसके लिये और आगे बहुत आगे बढ़ना होगा।

यहां जगत का अत्यन्त स्थूल प्रकाश हमें कैसे मिलता है? हम इस पर विचार करें। दीपक हो, स्नेह (घृत या तेल) हो। स्नेह में सनी बत्ती हो। फिर बत्ती का किसी जलते दीपक से संयोग हो जावे। इतनी बात होने पर हमें जगत का स्थूल आलोक (प्रकाश) प्राप्त होता है। आलोक प्राप्त होने पर भी यदि हमारी आखें नहीं हैं। आखें नष्ट हो गई हैं, या मोतिया बिन्द हो गया है। तो हमें उस ज्योति की अनुभूति हो सकती है। अतः सबसे पहले आखें होनी चाहियें, इसी प्रकार प्रभु का आलोक पाने के लिये भी एक विशेष प्रकार के दीप-स्नेह आदि एवं आलोक दर्शक के

उपयुक्त आखें आवश्यक हैं हमारे अन्दर श्रद्धा-विश्वास की निर्मल आखें हों। इन्द्रियां दीप का काम करने लगें। भगवत् प्रेम की स्निग्धता उन दीपों में भरने लगे। मन रूपी बत्ती उसके संयोग में आ कर स्निग्ध बन जावे। तथा यह बत्ती प्रभु का आलोक विस्तार करने वाले किसी सच्चे संत रूपी प्रज्वलित दीप से एक बार जुड़ जाय, तो भगवान की ज्योति हमारे अन्दर भी निश्चय ही प्रगट हो जायगी।

पहली बात तो यह है कि भगवान् की सत्ता में उनके अनन्त सामर्थ में उनके अनन्त गुणों से हमारी अचल अटल श्रद्धा हो। भगवान अवश्य हैं वह सब कुछ करने में समर्थ हैं। वह करूणा सिन्धु हैं, प्रेम समुद्र हैं, सौन्दर्य सागर हैं। उन में सत्य-क्षमा शुचिता, कृतज्ञता, दक्षता, सहिष्णुता, गम्भीरता, समता, मंगल-मयता, प्रेमावश्यता आदि अगणित अनन्त सद्गुण अपरी सीम मात्रा में नित्य वर्त्तमान रहते हैं। एक खुद्र दर्पन में सम्पूर्ण खुदर मन में बुद्धि में समा भी नही सकती, इस बात पर हमारा दृढ़ विश्वास हो। हमारे इस विश्वास को संशय की छाया कभी छूने न पाये। किन्तु हमारा दुर्भाग्य कहें या क्या कहें, हमारे अन्दर प्रभु विश्वास ही नहीं है। (हजार व्यक्तियों में से एक भी व्यक्ति कठिनता से मिलेगा जो सचमुच भगवान् में विश्वास रखता हो) हम पाप पर विश्वास कर लेते हैं। किसी मनुष्य पर अथवा अपने पुरुषार्थ (अहंकार) पर विश्वास कर लेते हैं, पर प्रभु पर नहीं। हम सोचते हैं कि हमारा अमुक कार्य है। इस में इतना झूठ तो हमें बोलना हीं पड़ेगा। बिना झूठ बोले काम होने का ही नहीं। दूसरे शब्दों में झूठ (पाप) पर हमारा विश्वास है कि झूठ हमारा काम कर देगा। हम देखते हैं कि हमारा यह काम अमुक व्यक्ति कर सकता है तथा उनपर विश्वास करके उन

से आशा लगाये रहते हैं अथवा सोचने लगते हैं अजी चलो रखा ही क्या है ? हम कर के ही छोड़ेंगे । अर्थात् हमें अपने अहंकार का भरोसा है हम भगवान की ओर नहीं ताकतें कि वह हमारा कार्य कर दे। सच तो यह है :-कि हमारा वह कार्य भी जैसे हम झूठ बोल कर सफल करने जा रहे हैं । मनुष्य की अहंकार की शक्ति से पूरा कर लेने का मन्सूबा बांध रहे हैं। पूरा होगा। भगवान् की शक्ति-प्ररेणा एवं इच्छा से किन्तु हमारा अविश्वास इस सत्य को हम पर प्रगट नहीं होने देता। और हमें ऐसा दीखता है कि झूठ से काम होगा, वह कर देंगे, हम कर लेंगे, इस प्रकार हम सदा उत्तरोत्तर भगवान् के आलोक से दूर हटते जा रहे हैं। उस ओर नहीं बढ़ते। कभी विश्वास भी करते हैं तो वह डगमग करता रहता है नेत्रों की ज्योति मोतिया बिन्द की तरह उस विश्वास में संशय समाया रहता है, मोतिया बिंद होने पर जैसे ज्योति धुन्धली हो जाती है सामने की वस्तु हम स्पष्ट देख नहीं पाते, वैसे ही विश्वास में संशय घुस जाने पर प्रभु करेंगें, कि नहीं, क्या प्रभू ने किया है या अमुक व्यक्ति की सहायता से हमारा काम हो गया । इस प्रकार संशय रहने पर विश्वास से होने वाले प्रभू के चमत्कार को सामने रहने पर भी हम स्पष्ट देख पाते इस लिये संशय हीन दृढ़ विश्वास करने की आवश्यकता है, ऐसा निर्मल स्थिर विश्वास होने पर ही सभी बातों में प्रभू की ओर ताकने की हमारी प्रवृत्ति होगी, हम उन की ओर देखना चाहेगें । देखेंगे, तथा देखने पर आगे या पीछे उन का आलोक हमारे नेत्रों में व्यक्त हो कर ही रहेगा । इस प्रकार बुद्धि में भगवान की सत्ता का दृढ़ निश्चय होना ही है-श्रद्धा की निर्मल आंख ।

२. दूसरी बात यह है कि हम इन्द्रियों की विषयों से कौन

कर उनका मुख प्रभू की ओर करें। जिस प्रकार उलटाये हुए दीपक में तेल रखा नहीं जा सकता। उसी प्रकार प्रभू की ओर पीठ देकर विषयों की ओर मुख रखने वाली इन्द्रियों में भगवद् प्रेम की स्निग्धता आ नहीं सकती। हमारी इन्द्रियों का मुख उल्टा हो रहा है प्रभू से उल्टी दिशा की ओर मुख करके यह दौड़ रही हैं। नेत्रों को सुन्दर रूप, नासिका को मीठी सुगन्ध। कान को मधुर शब्द-रसना को मधुर रस, त्वचा को सुकोमल स्पर्श अत्यन्त प्यारा है। सुन्दर, सुगन्ध, मधुर, सुकोमल के प्रति प्रीति बुरी भी नहीं है। पर सुन्दरता स्वांस मधुरता, कोमलता आदि यहां हैं कहां ? यह तो भ्रम है। हम थोड़ी देर के लिए विवेक से विचार करें। हमारी इन्द्रियां किसी के (परस्पर स्त्रियों पुरुषों के) सुन्दर रूप पर, सुरीली कंठ पर—इतर या सैंट से सुवासित अंगो के सुवास पर—अंगो कोमल स्पर्श आदि पर न्योछावर होने लगती हैं। पर मान ले, कल को उसकी मृत्यु हो जावे। तो फिर वह सुन्दरता सुवास आदि नष्ट क्यों हो जाते हैं। शरीर तो वहीं है। सुन्दरता क्या हो गई, मुख भी है, जीभ भी है, पर सुरीला कंठ लुप्त क्यों हो गया। कितना भी इतर-सैंट से उस मृत शरीर को चौपड़ दे, पर उसमें सड़ांद क्यों आने लग गई। अंग क्यों ऐठं गए, अब यदि हमारा विवेक ठीक २ कार्य करता है तो हम सहज में ही समझ सकते हैं। कि जब तक जीव के रूप में प्रभु की सत्ता प्रभू की आशिंक ज्योति उस शरीर में इन्द्रिय गोलकों में व्यक्त थी। तभी तक वह सुन्दरता थी सुरीली वाणी व्यक्त हो रही थी, सवास झरता था। कोमलता लहराती थी। वह सत्ता अव्यक्त हुई; कि यह सब भी उसी के साथ व्यक्त हो गए, चले गए। वास्तव में सौन्दर्य, माधुर्य

सुगन्ध प्रभू का था। प्रभू के रहने पर शरीर इन्द्रियों में उनकी छाया पड़ रही थी। हमारा इन्द्रियों को भ्रम हो रहा था, कि वह सुन्दरता आदि इस शरीर की हैं। अब प्रभू नहीं हैं, इस लिए वह भी नहीं देख रहे हैं। अतः यह सब प्रभू में हैं शरीर में नहीं। प्रभू नित्य है उनके सौन्दर्य, माधुर्य आदि गुण भी नित्य हैं। शरीर नाशवान है-सड़ गल कर मिट्टी में मिल जाने वाली वस्तु है इस विवेक को जागृत कर के नाशवान वस्तु नाशवान भाव से चिमटी हुई इन्द्रियों को हमें वहां से अलग कर प्रभू की ओर करना पड़ेगा, जब इन का मुख इधर से हट कर प्रभू की ओर हो जायगा-भ्रम की ओर से हट कर जब यह सत्य स्वरूप प्रभू की ओर ताकने लगेंगी तब यह प्रभू का आलोक प्रकट करने के लिए दीपक का काम देगीं। भगवद् प्रेम की स्निग्धता इन में एकत्रित हो सकेगी। दूसरे शब्दों में हमारी इन्द्रियों में विषयों के प्रति वैराग्य होना ही यहाँ उनका दीपक का काम करने लग जाना है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं, कि सब से सम्बन्ध तोड़ बाबा बन जाये, ऐसा करना तो इस पद्धति को सर्वथा नहीं समझना है। इस का तात्पर्य यह है, कि नश्वर में अवस्थित अविनाशी को हम ढूंढ निकाले ! सुन्दर-शब्द-स्पर्श-रूप-रस गंध इन सब का जहां उद्गम है वहां प्रभू की ओर हमारी इन्द्रियां केन्द्रित हों। फारसी के कवि ने क्या अच्छा लिखा है।

तरके दुनिया नेस्त तरके दौलतो फ़रजन्दो ज़न।

बलके दिलरा पाक करदन अज़ मुहब्बत ईं ओ आं।

अर्थातः—दौलत की और बच्चों के छोड़ देने का नाम त्याग नहीं है, बल्कि उनकी मुहब्बत से, उनके मोह से, हृदय को पवित्र कर देने का नाम त्याग है। यानी: जीवन के सब कार्य कर्म कर

धन कमाओ, विवाह करो सन्तान उत्पन्न करो, परन्तु हृदय में उनकी मुहब्बत को न फसाए। हृदय में सदैव अपने परमात्मा का ध्यान रख, इसी का नाम त्याग है।

इन्द्रियों का मुख भगवान की ओर हो जाने पर तीसरी एवं चौथी बात अपने आप आरम्भ हो जायेगी, विषयों के सम्बन्ध एवं प्रभु के सम्बन्ध के परिणाम में एक भारी अन्तर यह है कि विषयों के प्राप्त होने पर जब इन्द्रियां उन का उपभोग करने लगती हैं। तब बस, उसी क्षण से ही रस (आनन्द) की मात्रा कम होने लगजाती है किसी रूप के प्रति हमारा अति अधिक आकर्षण है, पर जहां उस रूप का उपभोग हमारी आंखों को मिलने लगा, कि बस उसी क्षण से दर्शन का रस कम होने लगता है, भले ही प्रारम्भ में यह लक्षित न हो, पर यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त है। किन्तु इस से ठीक विपरीत यदि एक बार भी हम सर्वत्र व्याप्त प्रभु के नित्य सुन्दर रूप की ओर आकर्षित हो जायें तो यह आकर्षण नित्य निरन्तर बढ़ता ही रहेगा, दर्शन सुख की मात्रा निरन्तर बढ़ती रहेगी, एक नवयुवक किसी रूपवती युवती को देख कर मुग्ध हो रहा है, तथा प्रभु के आलोक का अनुभव करने वाला, एक सन्त अपनी काली कलोटी पत्नि को देख कर प्रेम में डूब रहा है। इन दोनों में युवक का युवती के प्रति आकर्षण, प्रेम रस से प्राप्त होने वाला सुख तो मिलने में प्रथम क्षण ह्वास की ओर बढ़ रहा है। किन्तु सन्त का आकर्षण प्रेम सुख प्रति क्षण वृद्धि की ओर जा रहा है, ऐसा इस लिए कि वह युवक उस युवती के बाह्य नश्वर (नाशवान) सौन्दर्य को देख रहा है, तथा सन्त उस काली कलोटी पत्नी के अभ्यन्तर में व्यापक प्रभु के नित्य नवीन हो जाने वाले सौन्दर्य को

निहार रहा है। अतः जहां इन्द्रियों का मुख प्रभु की ओर हुआ कि इन का आकर्षण प्रभु की ओर क्षण २ में बढ़ने लगेगा, यह आकर्षण प्रेम में परिणत होने लगेगा, प्रेम जनित प्रेम स्निग्धता यह भरने लगेगी। साथ ही यह नियम है कि मन के बिना इन्द्रियां काम नहीं कर सकतीं, जहां इन्द्रियां काम कर रही हैं वहां मन भी निश्चय है ही. जब इन्द्रियां विषयों में भटक रही थीं, तो उस समय हमारे मन की वृत्तियां भी बिखरे तन्तुओं की भांति इधर उधर फैली रहती थीं, जब इन्द्रियें मुड़ कर एक प्रभु की ओर उनमुख हो गईं तो मनकी वृत्तियां भी एकाग्र हो गई, मानो बिखरे हुए तन्तु एकत्रित हो कर जुड़ कर बत्ती रूप में परिणत हो गए। साथ ही यदि हमारी इन्द्रियों में भगवत प्रेम की स्निग्धता भरती जा रही है तो निश्चय है उन के साथ रहने के कारण हमारा मन भी उसी स्निग्धता से सनता जा रहा है यही है इन्द्रिय रूप दीपक का स्निग्ध पदार्थ से भर जाना, एवं मन रूपी (आलोक ग्रहन करने का साधन) का स्निग्ध हो जाना इस को कहते हैं भगवान में राग हो जाना, राग युक्त मन का भगवान में एकाग्र हो जाना।

अब बस बात यह है इस दीप का किसी प्रज्वलित दीप से संसर्ग करा देना अर्थात हमारा राग युक्त एवं एकाग्र हुआ मन किसी ऐसे सन्त महातमा के मन से जा जुड़े, जिस में प्रभु की ज्योति जल रही हो, तो यह भी अपने आप प्रज्वलित हो जावेगा यदि हमारी बुद्धि में भगवान की सत्ता का दृढ़ निश्चय हो इन्द्रियों में विषयों के प्रति वैराग हो, भगवान के प्रति राग हो, राग युक्त मन भगवान में एकाग्र हो रहा हो, तो अपने हृदय में जलती हुई प्रभु की ज्योति को हमारे मन में छुवा कर ज्योति जगाने

वाले सन्त अपने आप हमें ढूंढते हुए आ पहुँचते हैं। नहीं २ स्वयं सविता देव, हमारे हृदय को आलोकित कर देते हैं, फिर अनुभव होता है, हम नहीं, हमारा कुछ नहीं एक मात्र वे ही वे हैं सर्वत्र इस की लीला चल रही है। जब हृदय में भगवान की ज्योति जग उठती है तब दीखता है कि समस्त विश्व प्रभु में ही स्थित है एवं विश्व के कण २ प्रभु अवस्थित हैं, फिर अपने पराये का भेद जाता रहता है, शत्रु-मित्र की भावना नष्ट हो जाती हैं, सर्वत्र एक अखंड आत्मसत्ता भगवतसत्ता की ही अनुभूति होती है, उस स्थिति में सागर की लहरें आंखों का कलरव वृक्षों की ओर से झुर २ कर बहने वाली वायु, पर्वत शिखरों पर झरते हुए झरने, पर्वतों से निकली हुई नदियां, सूर्य की प्रकाश मयी किरणें, चाँद की शीतल चाँदनी-नीला आकाश-नीले, उजले, काले, पीले, बादल, हरे भरे खेत, रंग बिरंगे फूल, फूलो पर गुण २ करते हुए भंवरे, प्रत्येक वस्तु हमारे नेत्रों के सामने भगवान की परम सुन्दर आनन्दमयी लीला का रूप बन कर उपस्थित होते हैं, इसी प्रकार शरीर को व्याधी, व्याधी मिट कर स्वास्थ्य को प्राप्ति, अन्न, वस्त्र के अभाव में होने वाला कष्ट अनेक स्वादिष्ट पदार्थों के भोजन करने का एवं सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित होने का सुख जनता के द्वारा किया हुआ अपमान-जनता के द्वारा दी हुई फूल मालाओं की भेंट, सर्वत्र फैली हुई निन्दा, सर्वत्र होने वाली प्रंशसा, पुत्र के जन्म का उत्सव, जवान बेटे की मृत्यु, बसे हुए गाँव का उजड़ जाना, उजड़े हुए गाँव का बस जाना, इन सब में हमें भगवान का मंगलमय स्पर्श हमें प्राप्त होता है, भगवान की लीला दीखती है, फिर हमारे ऊपर कोई बन्धन नहीं रहता, यह करो, यह मत करो,

ऐसा करो, ऐसे मत करो, इस समय करो, इस समय मत करो, यह नियन्त्रण उठ जाता है, क्यों कि हमारी चेष्टाएं भी उस अवस्था में कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखतीं, हमारे अन्दर से भी भगवान की इच्छा व्यक्त होती है अतः यह भी उस महान लीला की अंग भूत बन जाती है।

किसी गुफा में हज़ार वर्ष से लाख वर्ष से अंधकार भरा हो, किन्तु उसमें हम किसी प्रकार ऐसा छिद्र बना दें कि सूर्य की किरणें प्रवेश करने लग जायें, तो फिर गुफा का अंधकार उसी क्षण जाता रहेगा। लाखों वर्ष रहने वाला अंधकार यह नहीं कहेगा, कि मैं यहां इतने दिनों से था, मैं तो धीरे २ जाऊंगा, प्रकाश आया, की अंधकार विलीन हुआ। इस प्रकार हृदय में भगवान की दिव्य ज्योति होने भर की देर है जिस क्षण वह उदय हुई कि हमारा अनादि कलीन अज्ञान भी नष्ट हो जायेगा, तथा हम सर्वत्र भगवान की सत्ता का अनुभव कर निहाल हो जायेंगें।

यह बातें हमारे जीवन में आ जाये, इस के लिए हमें चेष्टा करनी ही चाहिए। यह नियम नहीं है, की सब के जीवन में यह एक ही कर्म से आयेंगी। हमारे संस्कार और वातावरण के अनुसार ही कर्म बनेगा। और भिन्न २ होगा। पर यह सत्य है कि इन में एक बात पूरी आ गई तो शेष बातें भी आकर ही रहेंगी। क्यों कि इन में परस्पर सम्बन्ध है। हमें तो चाहिए कि एक को, दो को, तीन को, जितना हम अपने जीवन में उतार सकें उन्हें क्रियात्मक रूप से अपने जीवन में उतारें, शेष अपने आप उतर आयेंगी, इस प्रकार चेष्टा कर के जीवन समाप्त होते, न होते हम भगवान की ज्योति जगा ले, ज्योति जगा कर उन को

पहचान लें यह हो गया तब तो ठीक है, अन्यथा जीवन सर्वथा निरर्थक गया। लाभ तो कुछ हुआ नहीं, प्रत्युत ऐसी महां हानि हुई कि उसे पूरा कर लेना अति कठिन है। एक मानव जीवन ही ऐसा है जिस में हमें विवेक प्राप्त है इस विवेक का उपयोग कर हम प्रभू के आलोक का दर्शन पा सकते हैं प्रत्येक प्राणी सर्वत्र समस्त विश्व में उन्हें भरा अनुभव कर परम आनन्द सिन्धु में सदा के लिए निमग्न हो सकते।

इह चेद वेदी हथ सत्य मस्ति,
न चेदि हावे दीन महती विनष्टि।
भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः,
प्रेत्यास्माल्लो काद मृता भवन्ति ॥

———

ओ३म

ओ३म द्विषो नो विश्वतो मुखाति नावेव पारय।
अप नः शाशु चदघम् ॥ ऋ० मं० १ सूः ९७ म ७

भावार्थः- जैसे न्यायधीश नाव में बिठाकर समुद्र के पार व निर्जन जंगल में डाकूओं को रोक कर प्रजा की पालना करता है वैसे अच्छी प्रकार उपासना को प्राप्त हुआ-ईश्वर अपने उपासना करने वालों को काम, क्रोध, लोभ, मोह भय रूपी शत्रुओं को शीघ्र निवृत कर जितेन्द्रिय पन को देता है।-सागर के किनारे खड़े हुए सागर की लहरों को देख कर हम सोचते हैं ओह सागर कितना क्षुब्ध है कितना चंचल है, पर कदाचित हम उसी समय सागर के भीतर प्रवेश कर के देख पाते, तो हमें दीखता कि इन तरंगों से कुछ ही दूर नीचे जाने पर समुन्द्र का गर्भ तो बिल्कुल शान्त है, ठीक इसी प्रकार जब हम अपने मन को टटोलते हैं तो दीखता है कि यहां से विषयों की आंधी चल रही है, किन्तु यदि मन के भीतर प्रवेश करते, मन जिस परमात्मा के आधार अवलम्बित है उस परमात्मा को छूने लगते, तब अनुभव होता कि यहां तो अखंड शान्ति छाई हुई है, क्षोभ नहीं, विकलता नहीं, यहां तो पूर्ण शान्ति का साम्राज्य छाया हुआ है:-

क्या यह सम्भव है कि हम मन के भीतर चले जायें, परमेश्वर को छूलें, हमें पूर्ण शान्ति मिल जायेगी। अवश्य सम्भव है। वह शान्ति ता हमारी प्रतीक्षा कर रही होगी, प्रभु तो हमारी बाट देख रहे हैं कि कब हम बाहिर की ओर शान्ति ढूंढ़ना छोड़ कर भीतर की ओर चल पड़े, प्रभु से जा मिलें उन से मिलकर हमारी जलन शान्त हो जाय, सदा के लिये हमें पूर्ण शान्ति मिल

जावे। पर हम तो उस ओर जा रहे हैं, जिधर शान्ति मिलने की नहीं, चाहते हैं हम शान्ति को ही। हम में से प्रत्येक निरन्तर शान्ति ढूंढ रहा है वहां, जहां शान्ति नहीं है। शान्ति एक मात्र प्रभु में है प्रभु नित्य ही हमारे अन्दर विराजते हैं हमारे इसी शान्त मन की ओट में अवस्थित हैं, उन्हीं के आश्रित हमारा मन है। अपने इतने निकट वर्त्तमान प्रभु से जब हमारा मिलन होगा, तभी शान्ति मिलेगी।

अभी हमारी बुद्धि प्रभु को छोड़ कर अन्य को विषय कर रही है, हमारा मन प्रभु को भूल कर अन्य का मनन कर रहा है इन्द्रियां प्रभु की ओर न जा कर दूसरी ओर दोड़ कर रही है, शरीर प्रभु की सेवा से विमुख हो रहा है, हमें झूठी ममता फांसे हुए है और मिथ्या अंहकार भ्रमित किये हुए हैं इसी से हम अशान्त है हमारी बुद्धि प्रभु को समर्पित हो जाय मन प्रभु पर न्योछावर हो जायं इन्द्रियां प्रभु परायणा हो जायें, शरीर प्रभु की सेवा में संलग्न हो जाए, झूठी ममता टूट जाए, और मिथ्या अंहकार मिट जाए। बस फिर अशान्ति भी सदा के लिये मिट जायेगी।

सज्जनों संसार सागर ही है, वह कौन सी लहरे हैं जो हमें सागर की तह में पहुँच कर शान्ति प्राप्त करने से बाधित कर रही हैं, मनुष्य जन्म से ही बंधा हुआ जन्म लेता है, जब माँ के गर्भ से उत्पन्न होना है तो माता की नाड़ से बंधा हुआ होता है जब तक नाड़ को न काटा जाए, बालक प्राण नहीं ले सकता, जीवित तब होता है जब नाड़ कट जाती है पर नाड़ कट जाने पर फिर गांठ लगा दी जाती है तो बच्चा उसी समय रोता है वह क्यों? इसी लिए की जब तक वह मां के गर्भ में था और जगत् जननी माता के आश्रित था बाहिर आने के वास्ते प्रार्थना की थी कि तू मुझे

इस नरक रूपी सागर से बाहिर निकाल, मैं तेरे रचे संसार की यात्रा करके लौट आऊंगा तेरा भजन कीर्तन करूंगा। अब बाहिर आते ही वह शुद्ध पवित्र निर्मल आत्मा अपनी जगत् जननी माता के वियोग में वह उसे ओ३म्-ओ३म्-ओ३म् को पुकारता है पर संसारिक जननी माता ओ३म् की पुजारनी नहीं वह बालक को रोता देख कर उसे थपकियां दे २ कर चुप करा शान्ति कराना चाहती है और नाना प्रकार के प्राकृत खिलौने ला-ला कर उसके सम्मुख डालती है, तो बालक यह रंग बिरंगे खिलौने देख कर उसी जगत् जननी माता ओ३म् की पुकार को भूल जाता है। और प्रकृति का परदा ऊपर आ जाता है वह रंग बिरंगे खिलौने वह पाच शत्रु है जो साधक को गिरानेवाले हैं वह कौन से शत्रु हैं कैसे गिराते हैं।

१ :— नदी के पार होने के लिए जो अपने सहारे अपने बल बाजू पर तैर कर जाना चाहता है, आरम्भ में पत्थरों की चिकनाहट से पांव फिसलने और मध्य में भवंर और पानी के तेज़ बहाव और आगे मगर मच्छ का भय है। इन सब से बच जावें तो पार किनारे जा लगता है, संसार सागर से साधक को भी पार होने में खतरे रहते हैं पहले पहल कदम रखते ही और बढ़ने पर मोह और लोभ कदम फैला देता है शरीर पर परिवार का मोह, धन सम्पत्ति का लोभ और अगर साधक इन से निकल जावे, तो काम और क्रोध भंवर और तेज बहाव उसे काम डबो देता है और क्रोध तेज़ बहाव है बेहोश कर देता है, अपने आप को सम्भाल नहीं सकता और नीचे को बहे जाता है इस से भी बच जावे, तो अहंकार लोक ईर्षा रूपी मगर मच्छ का भय

सर्वत्र रहता है, कहीं हड़प न कर जावे।
सन्त कबीर ने कहा है।

मनुष्य जन्म दुर्लभ है, मिले न बारम्बार।
तरोवर से पत्ता गिरा, कभी न लागे डार॥

मनुष्य जन्म दुर्लभ है – दुर्लभ मनुष्य शरीर।
भक्ति भाव हृदय में भरे – सो नर धीर गम्भीर॥

कबीर कबीर तुम क्या करो, शोधो मनुष्य शरीर।
पांचो को जो वश करे, वही दास कबीर॥

इन पांचों का गुरु है मन–भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है।

अंसयतात्मानः योगो दुष्प्राप इति मे मतीः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥
गीता ६। ३६

अर्थात–जिन का मन वश में नहीं है उन के लिए योग का प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, यह मेरा मत है परन्तु मन को वश में किये हुए प्रयत्न शील पुरुष साधन द्वारा योग प्राप्त कर सकते हैं।

भगवान श्री कृष्ण महाराज के इन वचनों के अनुसार यह सिद्ध होता है कि मन को वश किये बिना परमात्मा की प्राप्ति रूप योग दुष्प्राय है। यदि कोई ऐसा चाहे कि मन तो अपने इच्छा अनुसार बेलगाम हो कर विषय विकारों में स्वछंद नियन्त्रण किया करे और परमात्मा के दर्शन अपने आप ही हो जायें तो यह उस की भूल है।

दुखों की अत्यन्तिक निवृत्ति और आनन्दमय परमात्मा की प्राप्ति चाहने वाले को मन वश में करना ही होगा, इस के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। परन्तु मन स्वभाव से चंचल और बलवान है इसे वश में करना कोई साधारण बात नहीं। सारे साधन इस को वश में करने के लिए किये जाते हैं इस पर विजय मिलते ही मानों विश्व पर विजय मिल जाती है, भगवान शंकराचार्य ने कहा है।

"जितं जगतं केन, मनो हि येन"

जगत को किस ने जीता ? जिसने मन को जीत लिया। अर्जुन ने भी मन को वश में करना कठिन समझ कर भगवान कृष्ण से यही कहा था

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढ़म ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सु दुष्करम । गीता ६।३४

हे भगवान ! यह मन बड़ा ही चंचल, हठीला, दृढ़ और बलवान है, इसे रोकना मैं तो वायु के समान अत्यन्त दुष्कर समझता हूँ। इस से किसी को यह न समझ लेना चाहिए, कि जो बात अर्जुन के लिए इतनी कठिन थी वह हम लोगों के लिए कैसे सम्भव होगी। मन को जीतना कठिन अवश्य है भगवान कृष्ण ने इस बात को स्वीकार किया, पर साथ ही उपाय बतला दिया।

असंशयं महा बाहो मनो दुर्निग्रहं चलम ।
अभ्यासने तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

गीता ६ ३५

भगवान ने कहा अर्जुन ! इस में कोई संदेह नहीं कि इस चञ्चल मन का निग्रह करना बड़ा कठिन है, परन्तु अभ्यास और

वैराग्य से यह वश में हो सकता है। इस से यह सिद्ध हो गया कि मन का वश में करना कठिन भले ही हो, पर असम्भव नहीं और इस के वश किये बिना दुःखों की निवृति नहीं, अतएव इसे वश में करना ही चाहिए, इस के लिए सब से पहले इस का साधारण स्वरूप और स्वभाव जानने की आवश्यकता है।

"मन का स्वरूप"

मन क्या पदार्थ है यह आत्म और अनात्म पदार्थ के बीच में रहने वाली एक विलक्षण वस्तु है, यह स्वयं अनात्म और जड़ है किन्तु बन्ध और मोक्ष इसके आधीन हैं।

"मन एव मनुष्याणां कारण बन्ध मोक्षयोः"

बस मन ही जगत है, मन नहीं तो जगत नहीं। मन विकारी है इसका कार्य संकल्प-विकल्प करना है यह जिस पदार्थ को भली प्रकार ग्रहण करता है स्वयम् भी तदाकार बन जाता है यह राग के साथ ही चलता है, सारे अनर्थों की उत्पत्ति राग से होती है, राग न हो तो मन प्रपंचो की ओर न जाय, किसी भी विषय में गुण और सौन्दर्य देखकर उसमें राग होता है, इस से मन उन विषयों में प्रवृत होता है परन्तु जिस विषय में इसे दुख और दोष दीख पड़ते है उससे इसका द्वेष हो जाता है फिर यह उस में प्रवृत नहीं होता, यदि कभी भूल कर प्रवृत हो भी जाता है, तो उसमें अवगुण देख कर द्वेष से तत्काल लौट आता है। वास्तव में द्वेष वाले विषय में उसकी प्रवृति राग से होती है, साधारण तया यही मन का स्वरूप और स्वभाव है। अब सोचना यह है कि वश में क्यों कर हो, इस के लिए भगवान् कृष्ण ने बतला ही दिया

है। अभ्यास और वैराग्य-यही उपाय योग दर्शन में महर्षि पतंजलि ने बतलाया है।

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः

अर्थात्—अभ्यास और वैराग्य से चित्त का निरोध होता है, अतएव अब इसी अभ्यास और वैराग्य पर विचार करना चाहिये।

मन को वश में करने के साधन

विषयों से वैराग्यः—एक विष तो ऐसा होता है कि उसकी क्रिया सीमित रहती है, परिणाम भी निश्चित रहता है जैसे संखिया। किसी ने संखिया खा लिया तो उसकी क्रिया शरीर तक सीमित रहेगी, शरीर जलने लगेगा, अति असह्य पीड़ा होगी, हृदय की गति बंद हो जायेगी प्राण निकल जायेंगे। बस इससे अधिक संखिया खा लेने पर और कुछ भी नहीं होगा। पर कुछ विष ऐसे है जिनकी क्रिया बड़ी व्यापक होती है, परिणाम निरधारित नहीं होता। वे विष हैं! —घृणा, द्वेष, वैर, काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मात्सर्य आदि दुर्गुण। इनका सेवन मन के द्वारा होता है। इन में से किसी को भी किसी प्राणी ने यदि अपने अन्दर स्थान दे रखा है तो वह संखिया की तरह सीमित क्रिया कर के निश्चित फल दे कर ही निवृत नहीं होगा। यह दुर्गुण रूपी विष तो ऐसे हैं, जो जन्म जन्मान्तर तक साथ रहेंगे, सदा जलाते रहेंगे अनेक प्रकार की यातनाएँ देते रहेंगे, और न जाने कितनी बार जन्म मरण की मार्मिक पीड़ा देंगें।

किन्तु जब मनुष्य की बुद्धि में तमो गुण बढ़ता है तब वह भ्रम वश इन दुर्गुणों में अमृत की भावना करने लगता है।

फिर तो वह विरोधी व्यक्ति से, समाज से, जाति से, राष्ट्र से असुया-घृणा करने में अपने गौरव की रक्षा मानता है, द्वेष, वैर करने में अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा होते देखता है, कामनाओं को पोषण करने का नाम प्रगति रखता है, अन्दर बसी हुई क्रोध की वृत्ति को तेज मानने लगता है, मद का नाम आत्म-सन्मान रख कर उसकी रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझने लगता है, लोभ को अपनी उन्नति का साधन समझता है, मोह का नाम प्रेम रख कर जीवन को बर्बाद कर देना आदर्श मानता है, मात्सर्य को व्यक्ति समाज, जाति और राष्ट्र के सुधार के लिये आवश्यक वस्तु अनुभव करता है । इसी लिये यह विष, यह दुर्गुण, मनुष्य में बढ़ते चले जाते है । अन्तःकरण इन से इतना ढक जाता है कि हृदय से विराजित प्रभु की ओर से निरन्तर बढ़तीं हुई आनन्द धारा के लिये द्वार हा बंद हो जाता है, हमारी इन्द्रियों में प्रभु के द्वार दिए हुए उस परमानन्द का एक कण भी नहीं आ पाता । इन्द्रियां स्थाई आनन्द पाने के लिये तरसती रहती हैं, भटकती रहती हैं पर उन्हें स्थाई आनन्द कभी नहीं मिलता ।

इस विष समोह का-दुर्गुणों का त्याग अत्यन्त आवश्यक है । अन्यथा हम सदा जलते रहेगें, कभी सुखी नहीं होंगे । प्रभु के दिये हुए निरावली परमानन्द की अनुभूति हमें कभी नहीं होगी । और वह आनन्द हमें मिलने का ही नहीं है । आज उस आनन्द की छाया को विषय भोग के समय यदि हम पाते भी हैं तो उस में भी यह विष मिल जाते हैं, क्यों कि जिस अन्तः करण से जिन इन्द्रियों से हम भोगने जाते है, उन में यह दुर्गुण रूपी विष भरे पड़े हैं, हमारे लौकिक आनन्द को भी विषैला कर देते हैं । इसलिए इसका प्रतिकार हमें करना ही है । पर प्रतिकार

बातों से नहीं होगा। इन्हें शान्त करने के लिए साधना में तत्पर होकर करना पड़ेगा, न जाने कब से स्थान पाये हुए और निरन्तर बढ़ते हुए इन दुर्गुणों को जड़ मूल से उखाड़ फैंकने के लिए हमें सदा सजग रह कर परिश्रम करना पड़ेगा।

यह साधना क्या है, किस प्रकार का परिश्रम है, इसका उत्तर यह है, कि इस के लिए पहले तो दृढ़ विश्वास करना पड़ेगा, कि वास्तव में यह भयानक विष हैं और शीघ्र से शीघ्र त्यागने योग्य है। यदि इन में हमारी गुण बुद्धि बनी रही, तब तो यह छूटने असम्भव ही हैं। इस लिए पहले तो इन समस्त दोषों में हमारी विष बुद्धि हो, फिर साधना में लगें। जिस समय हमारे मन में किसी के प्रति घृणा की वृत्ति जागे, उस समय उसी क्षण हम अपने में उसके प्रति प्रेम की भावना जागृत करें। किसी दोष को देख कर ही तो हम उस से घृणा कर रहे हैं? पर क्या उस व्यक्ति में केवल दोष ही दोष भरे हैं? उस में कोई भी सद्गुण नहीं है यह तो असम्भव है। जगत बना है सत-रज और तम के मिलाप से। जहां तम है वहां सत-रज भी है। मात्रा कितनी भी अल्प हो। जहाँ हमें केवल तमोगुण दीखता हैं, तमोगुण के परिणाम दोष दीखते हैं, वहां सत एवं सत्व गुण के परिणाम स्वरूप कोई न कोई सद्गुण भी है ही। फिर हम क्यों नहीं अपनी दृष्टि उस सद्गुण पर ठहरा कर उस व्यक्ति से प्रेम करना आरम्भ करे? उसके उसी सद्गुण के देखते हुए हम उस के प्रति प्रेम की भावना भेजें। इसका निश्चित परिणाम यह होगा की जैसे घृणा की भावना दूसरे में भी घृणा उत्पन्न करती हैं वैसे ही प्रेम से भरी हुई हमारी गुण दृष्टि उस व्यक्ति के पास जा कर उस के उस अल्प सद्गुण को बढ़ा देगी। उस में प्रेम का बीज बो देगी। उसके प्रति प्रेम की भावना उत्पन्न करके उसमें सद्गुण

देख कर हम ने उसे तो ऊपर उठाया ही, हमारे अन्दर जो एक घृणा की गन्दी लहर उठी थी, उसे इस प्रेम की लहर ने दबा दिया, हम जलने लगते, पर उस के बदले हम में सुखमयी शीतलता आ गई।

जब हम में किसी के प्रति द्वेष भाव उत्पन्न हो उस समय हम तुरन्त यह भाव करें कि नहीं, यह तो हमारा मित्र है, निश्चय मित्र है इसके द्वारा हमारी बुराई हो नहीं सकती। जहां यह भाव हमारे मन में आये, कि यह दौड़कर उसके पास जा पहुँचेगा, उसके आन-जान में उसके अन्दर हमारे प्रति मित्रता का बीज बो ही देंगे यह सम्भव है, कि उस व्यक्ति का हृदय उपर्युक्त न होने के कारण अथवा हमारे मित्र भाव का बीज पुष्ट न होने के कारण उस के अंकुरित होने में समय लगे। पर उस में मित्र भाव का आरम्भ हो ही गया। साथ ही जो द्वेष की वृति हमें जलाती थी वह शान्त हो गई।

जिस क्षण काम सम्बंधी भावना मन में प्रगट हो उस क्षण हम लोग भोग के त्यागी परम उज्जवल भावनाएं बढ़ाने लग जाये। भोग के त्याग करने वाले संत-पुरुषों की त्यागमयी सुन्दर घटनाओं का स्मरण कर वैसे विचारों की आवृत्ति करने लगें। परिणाम यह होगा कि तत्परता से की हुई यह आवृति त्याग मयी विविध-सुन्दर विचार के परमाणों का निर्माण करने लगेगी। इतना ही नहीं, वातावरण में ऐसे सुन्दर जो भी विचार फैले होगें, उनको अपनो ओर आकर्षित करने लगेगी, हमारे यह सुन्दर भाव पुष्ठ होने लगेगें। हमारे अन्दर तो वह काम की बुरी कुत्सित वृति दबेगी ही, वातावरण में सुन्दर त्यागमयी परमाणु बिखर जायेंगे जो दूसरों की जलन शांत करने में सहायक बनेगें।

काम से ध्यान मारा जाता है-ध्यान के नष्ट होने से बुद्धि भ्रष्ट होती है, बुद्धि भ्रष्ट होने से विचार धारा दूषित हो जाती है, विचार हीन हो जाने से मनुष्य दुर्गुणों का ग्रास हो कर अपने भावी जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर देता है, उस का उपाय तत्काल यह है, की चूंकि काम का स्थान आंखों में है आंखों को उल्टा दिया जावे, तो काम वृति दब जाती है। क्रोध ज्ञान का नाश करता है। यह विकार युक्त मन से उत्पन्न होता है, मनुष्य स्वयं पागल हो जाता है, विवेक हीन हो जाता है, क्रोधी का वीर्य जल जाता है, क्रोध पहले मन में उत्पन्न होता है फिर अंहकार ने बुद्धि पर पर्दा डाल कर जीभा से कहा, गाली दो, जीभा विचारी आधीन है, नौकर है, केवल एक साधन या हथियार मात्र है उसने उस की आज्ञा का पालन किया, बुद्धि ने यह खोटा कर्म कर दिया, बुद्धि का स्थान है, "सिर" इस वास्ते फिर सर पर जूते पड़े। और क्रोधी की वैर दृष्टि होती है।, लोभी को लोभ करने पर कुछ मिल तो जाता है, कामी को भी काम विषय का कुछ आनन्द आता है, अंहकारी का भी मान प्रतिष्ठा भाव होता है, परन्तु क्रोधी को क्या मिलता है, इस वास्ते कहा गया है कि सब से बड़ा चाण्डाल क्रोध है, इस वास्ते इसे चाण्डाल कहते हैं, भंगी को, जैसे भंगी नित्य प्रति टट्टी साफ करता है उसे बदबू नहीं आती, ऐसे ही क्रोधी की बुद्धि नष्ट हो जाती है। क्रोध का स्थान है वाणी, जीभा को तत्काल उल्टा कर तालु से लगाये रखो-दूसरा क्रोध आने की सम्भावना से पूर्व ही हमक्षमा के विचारों का मनन आरम्भ कर दें, परिणाम यह होगा कि स्वभाव वश क्रोध आने पर उस के आगे पीछे क्षमा के भाव किसी के परमाणु घिरे रहेगी। हम सोचें, जब हम से अपराध हो जाता है, तब हम पर कोई नाराज न हो, हमें क्षमा कर दे, यह इच्छा हम में होती

है या न, न जाने हम प्रभु का कितना अपराध प्रति दिन प्रति क्षण करते हैं, यदि प्रभु हमें क्षमा न करें, तो हमारी क्या दशा हो ? अनन्त अपराध हम से होते हैं और प्रभु अनन्त बार क्षमा करते हैं। फिर हम भी ऐसे निश्चय क्यों न करें, कि हमारा भी यदि कोई बार बार अपराध करता है तो हम भी उसे क्यों न बार २ क्षमा दान ही देगें । तभी हम प्रभु से क्षमा पाने के अधिकारी हैं। कहने का तात्पर्य यह है, कि हमारा यदि क्रोधी स्वभाव है तो हम बड़ी तत्परता से दिन रात निरन्तर क्षमा की भावनाओं को अपने अन्दर बढ़ावें। अन्यथा जैसे आग जिस वस्तु में प्रगट होते पहले उसे जलाती है फिर सम्पर्क में आने वाली दूसरी वस्तुओं को। वैसे क्रोधाग्नि से पहले हम जलेगें, फिर औरों को जलायेंगे यदि हमें इस क्रोध रूप विष की ज्वाला से स्वयम् बचना है तो क्षमा की भावना से मन को भरते चले जावें। क्षमा के यह भाव कभी निष्फल तो होगें ही नहीं, बल्कि हमें शीतल कर के दूसरों के उन दोषों को भी निश्चय धो देंगे।

ऐसे ही जब अपने में पूर्णता की मिथ्या अनुभूति हो कर अथवा अपना प्रभुत्व गुण देख कर मद जायें तब हम सोचें, यह हमारा मद कितना मिथ्या है। हम बड़े भारी वक्ता हैं। माना-पर वाणी में बोलने की शक्ति किसी की दी हुई है, प्रभु ने ही तो शक्ति दी है। यदि प्रभु आज यह वाणी की शक्ति छीन लें, लकवा मार जाए, तो हमारा यह मद धूल में मिल जाए, या नहीं । हम बड़े विद्वान हैं सभी विषयों की जानकारी रखते हैं । ठीक है, पर हमारे मन में विद्या का उन्मेष किसने किया, विद्या ग्रहण की शक्ति मन में किस ने दी, प्रभु की शक्ति के बिना क्या यह सम्भव है ? यदि वह अपनी शक्ति हटा ले हमारा मस्तिष्क विकृत हो जाए, तो हमारा यह विद्या मद चूर-चूर हो जाय, या नहीं,

हमारा रूप बड़ा सुन्दर है, कंठ बड़ा मीठा है, संगीत में हमारी कौन बराबरी कर सकता है बहुत ठीक, पर कल यदि हमारे अनन्त दुष्कर्मों से किसी के फल स्वरूप प्रभु यह विधान कर दें; कि चेचक हो जाये, कोढ़ हो जाये, गले में कैन्सर हो जाय, तो हमारा वह सुन्दर रूप, कला पूर्ण कंठ तीन कौड़ी का हो जायगा वह नहीं, मतलब यह कि मद की वृति जागते ही मन में अपनी दीनता के भाव तथा सारा महत्व प्रभु का है, यह भाव बढ़ाने लगें। यह पवित्र दैन्यक विचार और इन से निर्मित भाव परमाणु हमारे मद को तो कुचल देगें ही, दूसरे में भी प्रभु के प्रति आस्तिकता का प्रभु के महत्व का भाव उदय करेंगे। स्वयम् हम प्रभु के चरणों में नत हो कर अभिमान के भार से मुक्त होगें, दूसरे का भी भार हल्का कर देगें।

लोभ की वृति को हम सन्तोष की भावना से नष्ट कर दें, जहाँ मन में भी वस्तु का लोभ आया हुआ दीखें, बस तुरन्त सोचना आरम्भ कर दें, हमें तो सब आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हैं ही, हमें और चाहिए ही क्या? दयामय प्रभु ! हमारी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हैं अपने आप वह हमारी सारी व्यवस्था करते हैं। ऐसी भावनाएँ हमें तो तृप्त करेंगी ही, हमारे सम्पर्क में जो भी आएँगी उनकी अतृप्ति मेटने में भी हेतु बनेगी, हमारे चारों ओर भी तो चाहिये यह जो हाहा कार मचा हुआ है वह भी किसी न किसी अंश में शान्त होगी ही, वह शान्ति आरम्भ में अत्यन्त नगण्य क्यों न हो।

मोह (ममता) का अवसर आने पर हम सोचें, क्या यह वस्तु सचमुच हमारी है, यदि हमारी है तो हम से हमारी इच्छा बिना अलग क्यों होती है, हमारी मानी हुई कोई भी वस्तु सदा तो हमारे साथ नहीं रहती। अत्यन्त निकट की हमारी यह

शरीर भी तो हमारा साथ नहीं देता। बहुत से व्यक्ति कहते थे, शरीर हमारा है, पर साथ नहीं गया, चिता की राख बन गया, फिर थोड़ी इनी-गिनी वस्तुओं को हम अपनी क्यों मानते हैं, यह तो हमारा भ्रम है। ऐसे विचारों को हम अपने उद्बुद करें। फिर इनकी भाव परमाणु सदा हमारी चारों ओर नाचती रहेंगी। मोह का प्रसंग उदय होते ही यह हमारे मन में ऐसे ही विचार जगा देंगी, क्योंकि यह नियम है, जो विचार हमारे अपने से सम्बन्ध होते हैं, वह एक बार उदय होने के पश्चात हमारे ही चारों ओर तैरते रहते हैं, रह २ कर अपने अनुरूप विचारों को मन में उदय कराते रहते हैं। फिर यह होगा, कि मोह में पड़ कर कर्त्तव्य विमुख होने से हम बच जायेंगे, केवल स्वयम् ही नहीं, हमारे यह वैराग्य, पूर्ण विचार, वातावरण में फैल कर सर्वथा अनजाने ही बहतों की व्यथा मिटा देंगे, उनको कर्त्तव्य पथ में आरूढ़ कर देंगे। नित्य प्रति परमात्मा की ओर बढ़ने का द्वार खोल देंगे।

इसी प्रकार जब दूसरे की उन्नति देख कर मत्सरता (डाह) मन में झांकने लगे, तब तुरन्त ही उल्लास की वृत्ति जगा कर हम इसे रोक दें। हमारा अणु २ दूसरे की उन्नति से प्रसन्न होने लगे, प्रसन्न हो कर हम उसके उन्नत सुखमय जीवन के चित्रों की कल्पना मन ही मन में आरम्भ कर दें, बिना विलम्ब यह विचार के चित्र उसके पास पहुँच जायेंगे। जा कर उसके सुख को तो बढ़ायेगें ही, साथ ही हमारे चारों ओर वैसा ही उन्नत सुखमय वातावरण बन जायेगा, हम सुखी हो जायेगें, हमारे विचारों के अनुरूप ही हमारा बाहरी संसार भी बनता है। यह बात नहीं है कि उपर्युक्त दुर्गुणों का एवं उनके प्रतिकार का बस इतना ही रूप है, कि जितना रूप कहा गया है। यह दुर्गुण

तो विविध प्रकार से विविध मनुष्यों में व्यक्त होते हैं तथा उनके प्रकार के अनुरूप ही अनेक उपायों से उनका प्रतिकार भी होता है। उनके त्याग की एक सुन्दर प्रक्रिया यह भी है कि उनका प्रयोग बदल दिया जावे। उचित मात्रा में रोग !—विशेष पर जैसे संखिया अमृत का काम करता है, वैसे ही यह हमारे दुर्गुण भी हमारे सहायक बन सकते हैं। यदि हम में घृणा है, नहीं मिटती, तो कोई बात नहीं, यह रहे अवश्य रहे पर हम दूसरे से घृणा न करके जो दम्भ कि वृत्ति है, मलिन गिरे हुए पापों से भरे हुए होने पर भी अपने को उज्जवल ऊँचा पवित्र दिखाने की जो आदत है उससे घृणा करें। ऐसे ही द्वेष दूसरो से न कर के हम अपनी नीच दुर्बलताओं से करें, उन्हें पनपने न दें, वे तनिक भी बढ़ी हुई देखें कि उनकी जड़ काट दें। कामना करें, तो ऐसी करें, हमें राज्य सुख नहीं चाहिये, स्वर्ग सुख भी नहीं, मोक्ष सुख की भी आवश्यकता नहीं, हमें तो यह चाहिये कि संसार में पड़े हुए दुख ताप से पीड़ित समस्त प्राणियों का दुःख मिट जाय, सभी सुखी हो जायें ! क्रोध आवे तो अपनी मन की चचंलता पर ही जावे, जो बार २ हमें प्रभु के संयोग से अलग संसार में घसीट लाती है हमारे क्रोध से ऐसी आग निकले, कि जिसमें हमारे मन की चचंलता भस्म हो जाय, और वह प्रभु में सदा के लिये समाहित हो जाये। मद हो तो इस बात का कि हम पर प्रभु की कैसी अनन्त, अपार, असीम कृपा है। उनकी कृपा पा कर हम कितने महान् बन गये हैं। ऐसे ही लोभ हो, तो जगत् रूप में विराजित प्रभु की सेवा का ही हो। तन-मन-धन अपना सर्वस्व लगा कर अतिशय प्रेम एवं उदार से हम जगत के प्रत्येक प्राणी की उसमें प्रभु को प्रत्यक्ष देख कर निरन्तर सेवा करें। फिर भी अतृप्ति बनी रहे, हाय ! सेवा का बहुत कम ही

अवसर मिला, साधन भी हमारे पास नहीं, कब हमें प्रभु की सेवा के और भी सुन्दर अवसर एवं साधन प्राप्त होगें, यदि मोह नहीं मिटता, तो न मिटे, बल्कि यह और भी बढ़ जाय, इतना बढ़ जाय कि समस्त जगत में फैल जाय, सारा जगत् हमारे मोह का विषय हो जाय, प्रभु के नाते सभी हमारे अपने बन जायें। मत्सरता से भी डर नहीं, वह भी रहे, पर वह उदय हो हमारी अपनी ही ख्याति को देख कर जगत में अपना मान सन्मान देख कर हम में दाह हो, हम उनके मेटने की इच्छा करने लगें। इस प्रकार यदि इन दुर्गुणों का अपने ऊपर उचित मात्रा में प्रयोग हो, तो यह दोष ही हमें प्रभु की प्राप्ति कराने वाले पद्-पद् पर परमानन्द-परम शान्ति का दान करने वाले सद्गुण बन जायेंगे।

अनवरत दीर्घ काल तक आदर पूर्वक हमें या तो दुर्गुणों के वृद्धि भावों का पोषण करना होगा। तभी हम इन्हे छोड़ पायेंगे या सहायक बन सकेंगे, पर यदि ऐसी साधना में लगना, इतना परिश्रम करना हमारे लिये सम्भव न हो, तो उस परिस्थिति में हम एक काम करें, जिन प्रभु से जगत् में अनन्त सद्गुण आते हैं जो अनन्त सद्गुणों की खान है उनके हाथों में हम अपने आपको पूर्ण रूप से सौंप दें। सौंपते ही हमारे अहं के स्थान पर प्रभु की सत्ता व्यक्त हो जायेगी, उनके परम दिव्य आलोक में हमारा अनादि अधंकार उसी क्षण विलीन हो जायेगा, हमारे दोष दुःख सदा के लिये मिट जायेंगे। यह संसार ही हमारे लिये कुछ और हो जायेगा। आज जो हमें यह सर्वत्र पाप ताप से भरा दीखता है वह फिर दिव्य मधु से भरा प्रतीत होगा!

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः

वायु में मधु भरा है, मधुर मंदगति से वह प्रवाहित हो रही है नदियां मधु रस का स्राव कर रही हैं ऐसी अनुभूति कर के कृतार्थ हो जायेंगे।

ओ३म्

ओ३म इन्द्र आशा भ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्।
जेता शत्रून विचर्षणि ॥ ऋ० २-४१-१२

शब्दार्थः—इन्द्र परमेश्वर मुझे सब दिशाओं से अभय कर दे। जो कि परमेश्वर शत्रुओं के जीतने वाला है। और सब कुछ (हर एक प्राणी के हर पाप कर्म को) पूरी तरह देखने वाला है।

हम किसी स्थान पर भय का सर्वथा कोई भी कारण न होने पर भी वैसे कारणों की कल्पना करके भयभीत हो जाते हैं, अंधकार में ठूंठ देख कर किसी हिंसक जन्तु की-चोर की, अथवा भूत की कल्पना कर के डर उठते हैं, सर्वथा मिथ्या धारणा से डर जाते हैं, किन्तु जो सर्वत्र निरन्तर विराजित है, समस्त पदार्थ जिन की सत्ता पर ही अवलम्बित हैं जो त्रिकाल सत्य हैं, उन भगवान की अनुभूति कर के हम निर्भय नहीं हो जाते, जहां ठूंठ है वहां न तो हिंसक जन्तु हैं न चोर हैं, न भूत हैं पर वहाँ उसी ठूंठ के अणु २ में निरन्तर भगवान तो अवश्यमेव हैं, निसंदेह हैं। फिर भी हम झूठ मूठ की मलीन कल्पना से तो डरने लगते हैं, पर वहां नित्य वर्त्तमान परम सुन्दर सत्य स्वरूप भगवान का अनुभव कर के निर्भय नहीं होते। यह है हमारी समझ का फेर। इस में सुधार कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। हमारा सर्व प्रथम कर्त्तव्य है, अन्यथा हमारा भय कभी भी मिटने का नहीं है।

किसी अवसर विशेष पर हम इने गिने कार्यों से ही भय भीत होते हैं, इतनी बात नहीं है। हमें तो कुच्छ पद २ पर घेरे हुए हैं। लाडला पुत्र है, हम डरते रहते हैं कि हमारे इस पुत्र को कुछ हो न जाय। कुछ सम्पति है सदा शंका बनी रहती है वह छिन न जाय, कोई चुरा न ले। समाज में देश में, हमारा बड़ा प्रभुत्व है

बड़ा सम्मान है बड़ी कीर्त्ति है, सदा शंका लगी रहती है कि कहीं हमारा प्रभुत्व मिट ना जाय, हमारा सम्मान कम न हो जाय, हमारी कीर्त्ति छीन न ले। सुन्दर स्वस्थ शरीर है इसको लेकर भय करने के कारणों की तो गणना ही नहीं, की जा सकती। गाँवों में हैजा फैला है, बस आज से ही गर्म जल पीना है। प्लेग फैला है बस इसी क्षण भी दूसरी जगह भाग चलें। चेचक फैला है बस टीका अभी तुरन्त इसी क्षण लगवा ही लें। अमुक सगे सम्बन्धी को क्षय हो गया है उनसे तो जैसे हो अलग रहना ही है। पेट में दर्द है कहीं अपेनडिक्स तो नहीं है, एक छोटी फुंसी है कहीं सैप्टिक तो नहीं हो जायेगा—सारांश यह है, कि शरीर में किंचनमात्र भी अनिष्ट उत्पन्न होते ही अनिष्ट की आशंका मात्र से हम भय से डर जाते हैं, हम में जो उपेक्षा वृत्ति अधिक धैर्यशाली हैं, उनकी अन्तश्चेतना में भी मृत्यु का भय तो निरन्तर वर्त्तमान रहता ही है। यहां तक कि मृत्यु की खेल प्राकृति का स्वाभाविक परिणाम बतलाने वाले अधिक अंश प्राणियों का अन्तर मन भी —यदि वह गम्भीरता से अपने हृदय की परख करें, तो दीखेगा, मृत्यु भय से शून्य नहीं है। मृत्यु से निडर रहने की, बनने की, होने की बात कहना, सुनना और बात है, तथा वास्तव में मन का मृत्यु से सर्वथा भय रहित हो जाना दूसरी बात है। हम इन भयों से बचने के लिये न जाने कितना यत्न करते हैं ऐड़ी-चोटी का पसीना एक कर देते हैं, फिर भी यह तो आते ही है। यह आवश्यक नहीं है कि यह सब के सब हम सभी के जीवन में एक ही समान क्रम से आवें। क्रम में, मात्रा में, विभाग में तो अन्तर होगा ही, क्योंकि हम में से प्रत्येक के संस्कार वासना और कर्म भिन्न २ हैं, किन्तु यह अन्तर रहते पर भी यह आते तो हैं ही। हम देखते ही रह जाते हैं। हमारे

आकाश पाताल एक कर देने पर भी हमारी सम्पति नष्ट हो जाती है। कल, बल, छल सब लगा देने पर भी हमारा प्रभुत्व, हमारा सम्मान, हमारी कीर्त्ति धूल में मिल जाती है, सारा कौशल लगा देने पर भी पूरी सावधानी रखने पर भी आधि व्याधि से जर्जर होकर अथवा किसी आकस्मिक घटना को निमित्त बना कर हमारा सुन्दर प्रिय शरीर निरकङ्काल के रूप में परिणत हो ही जाता है। तथा ऐसा जब हो जाता है अथवा होने लगता है, तब उस समय हम में से जो आस्तिक होने का ईश्वर की सत्ता में विश्वास करने का दम भरते हैं। वह भी हाहा कार कर उठते हैं। हाय रे भगवान! ये तुम ने क्या कर दिया।

अब कहीं ऐसे दूसरों पर हम यह सोच पाते—क्या भगवान इतने निष्ठुर हैं कि जननी की गोद से पुत्र को छीन लेने में, पिता की दृष्टि से पुत्र को ओझल कर देने में, पति पत्नि के प्रेमिल सम्बन्ध को छिन्न-भिन्न कर देने में, उन्हें तनिक भी दया नहीं आती। भगवान भी क्या चोर, डाकू की तरह धन के लोलुप हैं, जो हमारी सम्पति हरण कर लेते हैं। क्या वे भी हम जैसे जागतिक प्राणी की भांति ईर्षालु हैं, जो हमारा प्रभुत्व, सम्मान, कीर्ति वे सहन नहीं कर पाते, और उसे नष्ट कर देते हैं, क्या प्रभु को भी यह स्वस्थ, सुन्दर कलेवर असह्य हो गया है जो उन्होंने नजर लगा दी, और शरीर सूख कर अस्थि पिंजर हो गया, इस प्रकार यदि हम एकान्त चित्त से भय के पूर्व और पश्चात की स्थिति को प्रभु से जोड़ कर उन पर विचार कर पाते, तो अन्तर्यामी प्रभु हमें उत्तर देकर हमारा समाधान अवश्य कर देते, तथा हम ठीक अनुभव करने लगते कि नहीं, प्रभु निष्ठुर नहीं, वह तो दया के सागर हैं, वह लोलुप नहीं, वह तो नित्य पूर्ण काम, आपत काम हैं। वे ईर्षालु नहीं, बल्कि हमारा उत्कर्ष

तो उन्हें परम उल्लास से भर देता है। उन की दृष्टि में अशुभ का लेश नहीं है, परम शुभ, परम मंगल और अमृत का सरोत उनकी दृष्टि से सतत झड़ता रहता है। वे लेने की दृष्टि से कुछ भी नहीं लेते जो कुछ लेते हैं उसे कई गुणा बनाकर देने के लिए लेते हैं। हमारी मलीन अवस्था उन्हें सहय नहीं है, इस लिए मलीनता मिटा कर उसमें अपना निर्मल तेज भर कर लौटाने के लिए ही वह लेते हैं। वे तो किसी का भी अपने प्रिय जनों से वियोग नहीं कराते, जहां वियोग होते दीखता है वहां वह वास्तव में भ्रांति मिटाते हैं। वे देखते हैं कि मेरी यह भोली सन्तान मेरी ही कृत्रिम मूर्ति को मेरी ही एक छाया को, प्रियजन मान कर इतना भ्रांत हो गई है, कि इस की आंखें बन्द हो गई हैं, जिस पथ्य से उसे जाना चाहिए, उस ओर न जा कर यह भोला मानव उधर जा रहा है, जहां कंटीली बेलों का बीहड़ बन है। उस में फंस कर यह अति दुःख उठाये गा, इसे बड़ी यंत्रणा होगी मेरी इस कृत्रिम मूर्ति में यह इनना आसक्त हो गया है कि अन्य सारे कर्त्तव्यों की अवहेलना कर रहा है, इस के तो उत्थान और सुख का द्वार बंद हो रहा है। यह देख कर प्रभु अपनी ही उस कृत्रिम मूर्ति को अपनी ही एक छाया को जिसे हम लाडला लाल प्रियतमा-प्रियतम आदि नामों से पुकारते हैं, कुछ समय के लिए स्थानान्तीरत कर देते हैं। फिर हमारी आंखें खुल जाती हैं, तथा हम गंतव्य की ओर चलने लगते हैं प्रभु की यह चेष्टा क्या निष्ठुरता है। यह तो परम स्नेह की परिचायक है इसी तरह प्रभु किसी की सम्पत्ति को नहीं हरते। वह तो देखते हैं कि ओ हो! धन सम्पत्ति के भ्रम में इसने अपने अंगों में हाथों पर गन्द कीचड़ की पन्द्रह तह लपेट ली है पद्रह बुराईयों में नीचे से ऊपर तक सन गया है।

स्तेयं हिंसानृतंदम्भः काम क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरम विश्वासा संस्पर्धा व्यसनानी च ॥
श्री मद्भा० ११-२३-१८

अर्थात—धन से पंद्रह दोष उत्पन्न होते हैं, चोरी, हिंसा, झूठ, पाखण्ड, काम, क्रोध, गर्व, अंहकार, भेद, बुद्धि, बैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जुआ, शराब, बस यह देखकर दया परवश हुए वे अपने हाथों से हमारा कीचड़ धो देते हैं। हमें दीखता है कि वे हमारी सम्पति हर ले रहे हैं, पर वास्तव में हमारा मल धोते रहते हैं। स्वयं पूर्ण काम होने पर भी हमारे हित का उन्हें कितना अधिक ध्यान है ? ऐसे ही किसी की सच्ची प्रतिष्ठा को भी वह कभी नहीं मिटाते। उन्हे जब दीखता है, कि इसके लिए यह प्रतिष्ठा नहीं, घोर विष है और यह इसे पीने लग गया है इस पर जहर चढ़ने लगा है और प्रति कार हुए विना इस विष की ज्वाला में यह भस्म हो जायेगा, तब वह पहला काम यह करते हैं, कि प्रतिष्ठा के प्याले को फोड़ देते हैं फिर अपमान के रूप में वृद्धि औषधि (Antidote) दे कर चढ़े हुए जहर को उतार देते हैं तथा यदि कहीं वह किसी की सच्ची प्रतिष्ठा भी ले लेते हैं, तो हीरे को खराद पर चढ़ा कर और भी चमकदार बना देने की भांति उस पर प्रतिष्ठा को स्थाई परम उज्जवल बना देने के लिए, उस में अपना प्रकाश भर देने के लिए ही वह लेते हैं। अकारण निरर्थक वह हमारी प्रतिष्ठा का उपहरण कदापि नहीं करते। इसी तरह जिस मृत्यु (शरीर वियोग) को हम अत्यन्त भयंकर मानते हैं जो हमारे लिए हौआ बनी रहतीं है, वह भी वास्तव में भगवान का वरदान है, मृत्यु वस्तुतः प्रभु के द्वारा दिये जाने वाले नव जीवन के आहार के लिये स्थान बनाने आती है। हम

देखते हैं कि हमारा प्यारा शरीर है। पर प्रभु देखते हैं कि यह अमुक प्यारे शिशु पर लपेटा हुआ वस्त्र है, यह जीर्ण हो गया है, जगह २ इसमें छेद हो गये हैं। अमुक वस्त्र ऊपर से देखने में तो सुन्दर दीखता है, पर विषैले कीटाणुओं से भर गया है, अमुक का वस्त्र तो अत्यन्त मलीन हो गया है, इन बातों की ओर उनकी परम शुभ दृष्टि ठीक उपर्युक्त समय पर चली ही जाती है, तथा वह हमारा वस्त्र बदल देते हैं पुराना उतार कर हमारी वासना के अनुरूप नवीन वस्त्र (शरीर) हम पर लपेट देते हैं। अबोध शिशु की भांति हम उस समय चीतकार करते हैं और वह स्नेहमयी जननी की भांति हंस २ कर अपने लाड भरे हाथों से हमें नवीन वस्त्र धारण कराते हैं। निःसन्देह हमें ऐसी ही अनुभूति होती, यदि हम उन भय के अवसरों पर अपने और भय के बीच में प्रभु को उन के मंगलमय हाथ को देख पाते। फिर भय का देखना तो बन्द हो ही जाता।

बात यह हो गई है कि हम निरन्तर अपनी सीमित बुद्धि के आधार पर वस्तुओंको दो भागों में बांटते रहते हैं यह तो हमारे इष्ट हैं यह अनिष्ट हैं। आज जो इष्ट है कल अनिष्ट प्रतीत हो सकता है, अनिष्ट इष्ट बन सकती है परन्तु वर्गीकरण तो सदा चलता ही रहता है दो वर्ग बना कर हम इष्ट का स्वागत करते हैं अनिष्ट से भय करते हैं। अब कदाचित् हम ठीक ठीक यह समझ जाते कि जिस अनिष्ट से हम भय करते हैं, वह तो हमारे आने वाले इष्ट ही पूर्व भूमिका है, तो फिर उसी क्षण भय जाता रहता हैं। यदि हम आंख उठा कर देख सकते तो हमें दीखता कि प्रभु की सृष्टि में घटनाएँ यह प्रमाणित कर रही हैं कि अनिष्ट आता ही है इष्ट को लाने के लिए। अमावस का

तम आता है चन्द्र ज्योत्सना को प्रगट करने के लिए। ग्रीष्म का तप आता है वर्षा की शीतल धारा से पृथ्वी को सींच कर प्रफुल्लित करने के लिए। पतझड़ आती है नव वसन्त के लिए। आंधी आती है अकाश को निर्मल बना देने के लिए, ऐसे अगणित उदाहरण मिलेंगे, जहां हम गम्भीरता से विचार करने पर प्रत्यक्ष देख सकते हैं कि अनिष्ट आया है इष्ट को प्रकाशित करने के लिए। फिर यदि हमारी टूटी झोंपड़ियां जली हैं तो हम क्यों नहीं ऐसा मानें, कि जली है। सुन्दर मकान या महल बनाने के लिए, जो कुछ भी ध्वंस हुआ है, इस से अधिक सुन्दर नवीन निर्माण करने के लिए, जितने अनिष्ट हुए हैं वह सब के सब हुए है परम इष्ट की योजना बनाने के लिए। हम ने जहाँ ऐसा माना, की भय गया। हम में से कई कह सकते हैं कि झोंपड़ी को जलते समय तो हम ने देखा, पर हम ने महल बनते नहीं देखा-ध्वसं की विभिषिक देखी, परन्तु पुनः निर्माण का सुन्दर दृश्य सामने नहीं आया, अनिष्ट तो आये, पर इष्ट की झांकी नहीं हुई, उसके लिए हमें तीनक और भी गम्भीरता से विचार करना पड़ेगा। हमारा जीवन तो अनादि अनन्त इतिहासिक एक पोथी है। वर्त्तमान जीवन उसी पोथी पर एक इष्ठ है। यदि इस पृष्ट पर जलने की ध्वसं अनिष्ट की कथा लिखी हो, इन के चित्र अंकित हों तो यह आवश्यक नहीं इसी पृष्ट पर पुर्ननिमाण की इष्ट की सुखद गाथा भी लिखी ही जाये। ध्वसं का वर्णन ही तो निर्माण की कथा लिखी जाती है यदि ध्वसंके वणन में ही इष्ट पूरा हो गया है, तो अगले पृष्ट में (अगले जन्मो में या मरणान्तर की गति में) नवीन निर्माण वर्णन (दृश्य) अवश्य मिलेगें। इस पृष्ट पर नहीं है तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि अगले पृष्टों

पर भी नहीं होगें। पृष्ट उल्टें, फिर देख पायेगें, कि जगन्नियन्ता के इस कर्म में अनिष्ट के बाद इष्ट की प्राप्ति वाले विधान में कभी व्यति क्रम होता ही नहीं। अनिष्ट के बाद इष्ट की झांकी मिलेगी।

दार्शनिक दृष्टिकोण से यदि हम भय के हेतु पर विचार करें तो यह पता चलता है (द्वितीया द्वै भयं भवीत) परमात्मा के अतिरिक्त अन्य वस्तु की अनुभूति पर ही भय होता है।

जब कोई परमात्मा में थोड़ा सा भी भेद दर्शन करता रहता है उनके अतिरिक्त किसी और सत्ता का अनुभव करता है तब उसे भय होता है, भेद दर्शन करने वाले विद्वानों के लिए वह परमात्मा ही भय रूप बन जाता है।

(१) भयं द्वितीया भिनि बेशतः स्यात्।

देह आदि अनात्म पदार्थ में अभिनिवेश होने से ही भय होता है। निष्कर्ष यह कि यदि हम एक मात्र प्रभु की सत्ता ही सर्वत्र अनुभव करने लगें, हम प्रभु में स्थित हो सकें तो हमारा भय सदा के लिए छूट जाय। वास्तव में ही प्रभु के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु है ही नहीं। हमें जो कुछ भी प्रतीत होता है, उन सब के सब रूपों में एक मात्र वे ही अभिव्यक्त हो रहे हैं, किन्तु उनके अतिरिक्त अन्य की सत्ता न होने पर भी जब हम अन्य की सत्ता मान लेते हैं तथा मान कर अन्य का चिन्तन करते हैं, अन्य में मन लगाते हैं, तब हमें इस ओर मन ले जाने के कारण ही अन्य की प्रतीति होती है। स्वप्न समय यह मन ही तो एक विचित्र सृष्टि रचना करता है। जागते समय भी जब हम मनोरथ के प्रवाह में बहने लगते हैं तब मन कितना विचित्र संसार खड़ा कर देता है? मन की कल्पना से ही तो यह स्वप्न की

सृष्टि मनोरथ का संसार प्रतीत होता है। इस स्वप्न की सृष्टि मनोरथ के संसार सर्वथा सब ओर से केवल हम ही हम भरे हैं या नहीं ? ठीक इसी प्रकार यह जगत प्रभु का संकल्प है। एक मात्र वे ही इस जगत में सर्वथा सब समय सब ओर से सर्वत्र परिपूर्ण हैं। फिर भी उनकी ही एक मात्र सत्ता रहने पर भी हमारे मन की कल्पना से अन्य की प्रतीति हो रही है। इसी लिए सीधा उपाय यह है कि हम अन्य का संकल्प विकल्प करने वाले मन को प्रभु में विरुद्ध कर दें। मन उन में विरुद्ध हुआ कि एक मात्र उन की ही सत्ता बच रहेगी। फिर भय सदा के लिए निवृत हो जायेगा। आत्म विद्या विषारद 'कवि' नामिक योगीश्वर भी भय से त्राण पाने का उपर्युक्त संकेत ही कर सकते हैं। किन्तु हम यदि इस सिद्धांत को न समझ सकें मन को निरुद्ध न कर सकें तो क्या करें ? हमारा भय फिर कैसे मिटे ? क्या हम निराश हो जांये ? नहीं निराश होने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं। इसमें भी अत्यन्त सरल मार्ग है। जिसका अनुसरण निर्बाध रूप से हम में से प्रत्येक कर सकता है। वह है प्रभु की शरण में चले जाने का मार्ग। उनके दिव्य अमर संदेश को स्मरण कर समस्त देहधारियों के आत्मरूप प्रभु की शरण हम सम्पूर्ण अन्तः करण से ग्रहण कर लें हम सब प्रकार से एक मात्र उन की शरण ले लें, बस फिर उनसे जुड़ कर हम सदा के लिए समस्त भयों से मुक्त हो ही जायेंगें।

मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्।
याहि सर्वात्मभावेन मयास्या ह्यकुतोभयाः॥

भय की निवृति यदि हम चाहते हैं तो अविलम्ब हमें ऐसा कर ही लेना चाहिये।

ओ३म्

महात्मा पुरुषों के द्वारा अनुभूत
मन को वश में करने के साधन

१. मन को वश में करने में नियमानुवर्तिता से बड़ी सहायता मिलती है। सारे काम ठीक समय पर नियमानुसार होने चाहियें। प्रातः का अमृत समय बिछौने से उठकर रात को सोने तक दिन भर के कार्यों की ऐसी नियमित दिनचर्या बना लेनी चाहिए कि जिससे जिस समय जो कार्य करना हो मन अपने आप स्वाभाव से ही उस समय उसी कार्य में लग जावें । संसार साधन में तो नियमानुवर्तिता से लाभ होता ही है, परमार्थ में भी इससे बड़ा लाभ होता है । अपने इष्ट स्वरूप के ध्यान के लिये प्रतिदिन जिस स्थान पर, जिस आसन पर, जिस आसन से जिस समय और जितने समय बैठा जाय, उसमें किसी दिन भी व्यक्ति क्रम नहीं होना चाहिये । पांच मिनट का भी नियमित ध्यान अनियमित अधिक समय के ध्यान से उत्तम है। आज दस मिनट बैठें, कल आध घन्टा, परसों बिल्कुल नागा, इस प्रकार के साधन से साधक की सिद्धि कठिनता से मिलती है। जब पांच मिनट का ध्यान नियम से होने लगे, तब दस मिन्ट का करे, परन्तु दस मिनट का करने के बाद किसी दिन भी नौ मिनट न होना चाहिए। इसी प्रकार स्थान, आसन, समय, इष्ट मन्त्र का बार २ परिवर्त्तन नहीं करना चाहिये। इस प्रकार नियमानुवर्तिता से भी मन स्थिर होता है। नियमों का पालन, खाने, पीने, पहनने, सोने और व्यवहार करने सभी में होना चाहिये, नियम अपनी अवस्थानुकूल होना चाहिये, शास्त्र सम्मत बना लेने चाहियें।

२. मन के प्रत्येक कार्य पर विचार करना चाहिये।

प्रतिदिन रात को सोने से पूर्व दिन भर के कार्यों पर विचार करना उचित है। यद्यपि मन की सारी उधेड़ बुन का स्मरण होना बड़ा कठिन है, परन्तु जितनी याद रहे उतनी ही बातों पर विचार कर जो-जो सात्विक संकल्प मालूम हो, उनके मन की सहारना करना और जो जो संकल्प राजसिक और तामसिक मालूम पड़े, इनके लिये मन को धिक्कारना चाहिये। प्रतिदिन इस प्रकार के अभ्यास से मन पर सत् कार्य करने और असत कार्य छोड़ने के संस्कार जानने लगेंगे, जिस से कुछ ही समय में उन बुराइयों से बचकर भले कार्यों में लग जायगा। मन पहले भले कार्य वाला होगा, तब उसे वश करने में सुगमता होगी, कुसंग में पड़ा हुआ बालक जब तक कुसंग नहीं छोड़ता, तब तक उसे कुसंगियों से बुरी सलाह मिलती रहेगी, इससे उसका वश में होना कठिन रहता है, पर जब कुसंग छूट जाता है, तब उसे बुरी सलाह नहीं मिल सकती, दिन रात घर में उसको माता पिता के सद् उपदेश उसे मिलते हैं, वह भली २ बातें सुनता है, फिर उस से सुधार कर माता पिता के आज्ञाकारी होने में विलम्ब नहीं होता। इस तरह यदि विषय चिन्तन करने वाले मन को कोई कोई एक साथ ही सर्वथा विषय रहित करना चाहे तो वह नहीं कर सकता है। पहले मन को बुरे चिन्तन से बचना चाहिये। तब वह परमात्मा सम्बन्धी शुभ चिन्तन करने लगेगा। तब इसको वश करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

शनै शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृति गृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥

(गीता ६। २५)

धीरे २ अभ्यास करता हुआ उपरामता को प्राप्त हो, धैर्य

युक्त बुद्धि से मन को परमात्मा में स्थिर करके और किसी भी विचार को मन में न आने दे।

जिस २ कारण से मन संसारिक पदार्थों में विचरे, उस उस से रोक कर परमात्मा में स्थिर करें। मन परऐसा पहरा बिठा दे कि यह भाग ही न सकें। यदि किसी प्रकार भी न माने तो फिर इसे भागने की पूरी स्वतन्त्रता दे दी जाए, परन्तु यह जहां जाये वहीं पर परमात्मा की भावना की जावे, वहीं पर इसे परमात्मा के स्वरूप में लगाया जावे इसी उपाए से भी स्थिर हो सकता है। एक तत्त्व का अभ्यास करना। योग दर्शन में महर्षि पतञ्जली लिखते हैं।

यत प्रतिषेधार्थ मेक तत्त्वो भ्यासः

(समाधिपाद ३२)

चित्त का विक्षेप दूर करने के लिए तत्त्वों में से किसी एक का अभ्यास करना चाहिए एक तत्त्व के अभ्यास का अर्थ ऐसा भी हो सकता है कि किसी एक वस्तु की तरफ एक दृष्टि देखते रहना, जब तक आंखों की पलक न पड़े, या आंखों में जल न आये, तब तक उस एक ही चिन्ह की तरफ देखते रहना चाहिए, चिन्ह धीरे २ छोटा करते रहना चाहिये। अन्त में उसी चिन्ह को बिल्कुल ही हटा देना चाहिये।

दृष्टि स्थिरायत्र विनावलोकनम्

अवलोकन न करने पर भी दृष्टि स्थिर रहे। ऐसा हो जाने पर चित्त विक्षेप नहीं रहता, इसी प्रकार प्रतिदिन आध-आध घंटा भी अभ्यास किया जाये, तो मन के स्थिर होने में अच्छी सफलता मिल सकती है। इसी प्रकार दोनो पलकों में दृष्टि जमा कर जब तक आंखों में जल न आ जाए तब तक देखते रहने का अभ्यास किया जाता है इससे मन भी निश्चल होता है, इसी को त्राटक

कहते हैं। कहने की आवश्यक्ता नहीं कि इस प्रकार के अभ्यास में नियमितरूप से जो जितना ही अधिक समय दे सकेगा उसे उतना ही अधिक लाभ होगा।

ओ३म् यदेषांपृषती रथेप्रष्टिर्वहति रोहितः शान्ति शुभ्रा रिणन्नपः। ऋग० मं० ८ सू० ७ मं० २८

भावार्थः—जब भगवान् की ओर मन जाता है तब नैयन से करुणा रस निकलने लगता है। नित्य नियम पूर्वक पद्म आसन, सुख आसन से सीधा बैठ कर नाभि पर दृष्टि जमा कर जब तक पलक न पड़े तब तक एक मन से देखते रहना चाहिये। ऐसा करने से शीघ्र ही मन स्थिर होता है। इस प्रकार नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमा कर बैठने से भी चित्त निश्चल हो जाता है, इससे ज्योति के दर्शन भी होते हैं।

कानों में ऊंगली दे कर शब्द सुनने का अभ्यास किया जाता है इस में पहले भौरों के गुंजार अथवा प्रातः कालीन पक्षियों के चहचहाने जैसा शब्द सुनाई देता है। फिर क्रमशः घुंघरुओं, शंख, घंटा, ताल, मुरली भैरी, मृदंग, नफरी और सिंह गर्जन के सदृश्य शब्द सुनाई देते हैं। इस प्रकार दस प्रकार के शब्द सुनाई देने लगने के बाद दिव्य ओ३म् शब्द का श्रवण होता है, जिस से साधिक समाधि को प्राप्त हो जाता है। यह भी मन के निश्चल करने का उत्तम साधन है।

सब से ज्यादा आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य का आहार शुद्ध हो, आहार शुद्ध तब होगा जब पवित्र व्यवहार से कमाई की गई हो, यदि कमाई ब्लैक, रिश्वत, चोरी अन्याय, लोभ, लालच से प्राप्त की गई है तो मन कैसे शुद्ध होगा,

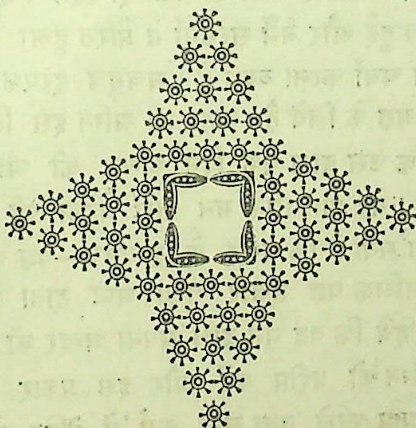
माना कि आप की कमाई शुद्ध और पवित्र है अन्न पदार्थ घर

लाए, देवी ने भोजन बनाया, पर क्रोध, गुस्सा, रंज व फिकर, ईर्षा, द्वेष, अवस्था में बनाया, तो इस आहार के सेवन करने से क्या मन शान्त होगा ? नहीं—हरगिज़ नहीं, अच्छा मान लिया जाय, घर में देवी ने श्रद्धा-प्रेम से भोजन बनाया पर दैव योग से उस से सब्जी में अकस्मात एक माशा नमक अधिक पड़ गया और जब आप भोजन करने लगे तो सब्जी कड़वी लगी, तो वैश और गुस्सा, क्रोध में आकर देवी को अप शब्द बोलने प्रारम्भ कर दिये, और फिर वही भोजन खा गए, तो क्या अब आप का मन शान्त और एकाग्र होगा ? अच्छा मान लो, कमाई पवित्र, बनाने वाली ने भी श्रद्धा से बनाया और भोजन परोस कर आप के सामने रखा, अब आप को भूख तो है नहीं, तो देवी से कहा, आज रोटी अच्छी नहीं लग रही, दही लाओ, मीठा लाओ, चटनी लाओ, इत्यादि अब सोचो इच्छाएं, तृषणाएं इन्द्रियों की तृप्ति अर्थ बढ़ाएं, तो क्या मन शान्त, एकाग्र होगा। जब सन्तोष नहीं किया, तो मन एकाग्र कैसे हो ! भोजन को भगवत् भजन निमित्त किया जावे, एकाग्र चित्त फिक्र, चिन्ता से रहित हो कर दृष्टि भोजन पर रहे, इधर-उधर न देखे, मौन में ही भोजन करे, गायत्री जाप या ओ३म् का जाप करते हुए भोजन करें।
फिर देखिये मन शान्त होता है या नहीं।

प्यारे ! यह बातें हैं छोटी छोटी, और साधारण सी हैं, पर यह याद रखो, शक्ति भी छोटी वस्तु में होती है, सदैव छोटी वस्तु से बड़ी बना करती है पर हमारी दृष्टि वर्त्तमान काल में कैसी है। सुनिये:—

एक देवी रसोई में भोजन बना रही है दैवयोग से कुत्ता चौके में घुस गया, तो देवी कुत्ते के चौके में घुस जाने पर हाहा कार मचा देती है, हाय मेरा चौका भ्रष्ट हो गया। इसके अतिरिक्त

यदि देवी ने भोजन शुद्ध पवित्र बनाया, और परोस कर थाली खाने को आगे धरी, तो मक्खी आ कर भोजन पर बैठ गई, तो उसे हाथ से उड़ा दिया जरा भी भय और भोजन के अपवित्र हो जाने का फिक्र नहीं हुआ। हालांकि कुत्ते के चौंके में घुस जाने पर भोजन का कुछ नहीं विगड़ा था, उस पर तो हाहा कार मची थी, पर मक्खी जो टट्टी पर पंख लपटाये हुए भोजन पर आ बैठी जो शुद्ध पवित्र भोजन को दुर्गन्धित-भ्रष्ट कर गई है इसका कोई ध्यान नहीं, बस हमारी दृष्टि ऐसी ही है। सावधान रहो बिना कारण के कार्य नहीं होता, पहले कारण शुद्ध पवित्र हो फिर कार्य की सिद्धि होगी, ओ३म् शम्। शान्ति शान्ति शान्ति।



ओ३म्

ओ३म् अग्नि मिन्धानो मनसा धियं
सचेत मर्त्यः अग्निमीधे विवस्वभिः

ऋ० ८-१०२, २

शब्दार्थ !—मन द्वारा अग्नि को, आत्मा को प्रज्ज्वलित करता हुआ मनुष्य सद् बुद्धि को और सत् कर्म को प्राप्त करें। मैं तम को हटाने वाली ज्ञान किरणों द्वारा इस अग्नि को प्रदीप्त करता हूँ।

हम जो प्रतिदिन आग जला कर अग्नि होत्र करते हैं उससे क्या हुआ, यदि इस प्रतिदिन अग्नि दीपन से हमारे अन्दर की आत्मा और ज्योति न जग सकी। यदि हमारे प्रतिदिन अग्नि होत्र करते रहने पर भी हमारे जीवन में कुछ भेद न आया, हमारा व्यवहार आचरण वैसा का वैसा ही रहा, न हम में सद् बुद्धि ही जागृत हुई और न मैं सत्कर्मों में प्रेरित हुआ तो हमारा यह सब अग्नि चर्या करना व्यर्थ है। सचमुच हरएक बाहर का यज्ञ अन्दर के यज्ञ के लिये है। बाहर की अग्नि इस लिये प्रदीप्त की जाती है, कि उस द्वारा एक दिन अन्दर की आत्म अग्नि प्रदीप्त हो जाय। यह आत्मग्नि मन द्वारा प्रदीप्त की जाती है। इसी लिए कहा गया है कि बाहर के द्रव्यमय—यज्ञ की अपेक्षा अन्दर का मानसिक यज्ञ हज़ार गुणा श्रेष्ट होता है। अतः मनुष्य को चाहिये कि वह मन द्वारा अपनी अन्दर की अग्नि को जलावे, आत्मग्नि को प्रदीप्त करें और इस प्रकार "धी" को सद् बुद्धि को प्राप्त करले, तथा सत्य कर्म में प्रेरित होता हुआ आत्म कल्याण को पा जावे। जो मनुष्य मनन करते हैं, अर्थात आत्म निरक्षण, आत्म चिन्तन विचार और भावना करते हैं,

जाप करते है तथा ध्यान-धारणा-समाधि करते हैं वह सब मानसिक प्रक्रियों द्वारा आत्म ज्योति को जगा लेते है, और उन्हें सत्य बुद्धि ज्ञान प्रकाश सदा ठीक कर्म में प्रवृत करानेवाली समझ मिल जाती है।

मन मनसा ध्यायते तद्वाचा वदति यद्वाचा वदत्ति
तत कर्मणा करोतिः यत कर्मणा करोति तदभि सं पद्यते

अर्थात—जो मन में, वह वाणी, में जो वाणी में वह कर्म में जो कर्म करता है वही फल पाता है बुद्धिमान कहलाता है वर्त्तमान युग में भारत के स्वतन्त्र कराने वाले भारत के सपूत महात्मा गाँधी ने भारत को स्वतन्त्र कराने का यज्ञ रचा, सब से पूर्व उसने यम-नियम पर आचारण किया, कैसे ! उन्हों ने पहले ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया, उसके पूर्ण करने के वास्ते स्वाध्याय किया, स्वाध्याय से मुराद यह न समझें, की उन्होंने ग्रन्थों का पठन पाठन किया, बल्कि स्वाध्याय के अर्थ हैं अपना अध्यायन, अपना निरीक्षण किया। पहले बाहरी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की, और ब्रह्म के प्राप्त करने के वास्ते अहिंसा और सत्य का व्रत किया, अहिंसा प्राप्त करने के लिए अन्दर बाहर के दोषों को त्याग किया, जिससे पवित्रता को प्राप्त किया, और सत्य को धारण करने के लिए उसने अपने आपको ईश्वर समर्पण कर दिया, गोया अब वह अपने आपको परमात्मा का यन्त्र जानने लगा, वह स्वयं कर्म करता हुआ न करने में ही अपने आपको समझता था। जो भी कर्म किया ईश्वर का जान कर करते हुए उसी के समर्पण कर दिया। कहते है जब इंगलैंड में गोलमेज़ कान्फ्रैंस हुई थी तो महात्मा गांधी उन्ही दिनों में शिमला में विराजमान थे, इंगलैण्ड पहुँचने की तिथि की जब महात्मा जी को सूचना मिली, तो महात्मा जी ने कहा मैं अब नहीं जा सकता समय नहीं है क्यों

कि मैं कल तक बम्बई नहीं पहुँच सकता, इसके इन्कार करने पर गवर्नमेंट कम्पायमान हुई और तत्काल शिमला से स्पैशल ट्रेन तैयार की, जो बम्बई तक लाईन बन्द कर दी गई और महात्मा गांधी को निश्चित तिथि बम्बई पहुँचाया गया, अब जरा सोचो, भारत के सच्चे सपूत तपस्वी त्यागी, लंगोट बन्ध के तेज और प्रकाश से किस कदर भारत के सारे यूरोपियन राज्य अधिकारी, नहीं २ इंगलैण्ड की पार्लीयामेन्ट तक इन्कार करने पर क्यों कम्पायमान हो गये थे और उन्हे समय नियत पर बम्बई जब तक नहीं पहुचाया गया शांति नहीं आई थी यह क्यों ? एक अहिंसा और सत्य का सच्चा पुजारी भारत माता का सच्चा हितकारी, जिसने जीवन काल में प्राणी मात्र को अपने पिता की सन्तान तुल्य माना और जाना, वैसे ही अपनाया और अपनी आत्मा के तुल्य जानकर व्यवहार किया। जब वह बम्बई पहुँचे, तो कांग्रेस के सर्व अधिकारी और सदस्य उपस्थित थे, अब जब जहाज पर चढ़ने का समय आया तो कांग्रेस के मेम्बरों ने एक दूसरे से यूं पूछा कि महात्मा जी ने भारत की वह सब बातें नोट कर ली हैं जो गोलमेज़ कांफ्रेंस में पेश करनी होगी, सभी ने अज्ञानता प्रगट की, तो महात्मा गांधी के सैक्रेटरी से पूछा गया, तो उसने भी यही उत्तर दिया, मुझे कुछ ज्ञान नहीं है, अब सभी एक दूसरे से यूं कहने लगे, तुम महात्मां जी से पूछो, परन्तु अब सामने हो पूछता कोई नहीं, अन्त में एक सदस्य ने महात्मां जी से यूं कहा कि यह सभी पूछ रहे हैं कि जितनी बातें वहां पर पेश करनी होंगी क्या वह सब आपने नोट कर ली हैं तो महात्मा जी ने उत्तर दिया, कि कुछ नहीं नोट लिखा, मुझे जो वह कहलवाएगा मैं कह दूगां, अब यह बात सुन कर दिल में कुढ़ते हुए एक दूसरे को पृथक ले जाकर कहने लगे, यह बूढ़ा सब कार्य अपनी मर्जी से

करता है। भारत के स्वतन्त्रता का बीड़ा उठाया हुआ है कितने संकट में भारत को जकड़ा हुआ है उन को बैठकर मीटिगं कर के लिख ली जातीं, ताकि आगे पेश की जातीं। अब जब महात्मा जी की दृष्टि कांग्रेस के अधिकारियों पर पड़ी, तो हंसते हुए कहा देखो प्यारे! अभी नाव किनारे पर खड़ी है, आप सब बातें जो हों बैठ कर मीटिगं कर के नोट कर लीजिए, फिर तुम से कोई चला जावे, और वह पेश कर दे। यह उत्तर सुनकर सब के सिर झुक गये और मुंह पर ताले लग गये और महात्मां जी जहाज़ पर सवार होकर चले गये, जब वह इंगलैण्ड पहुँचे, तो महात्मा जी से पूछा गया की भारत में क्या संकट हैं तो महात्माँ जी ने अपने तन से खद्दर का कफन उतार कर कहा कि पेट के लिए रोटी नहीं, तन का कपड़ा नहीं, मानो सागर को कूज़े में भर दिया। क्या यह शब्द महात्माँ गांधी ने अपनी बुद्धि से सोच विचार कर कहे थे नहीं हरगिज नहीं, कहलवाने वाले ने जो कहलवाना था कह दिया, महात्मां जी जब जब कोई प्रश्न हल करते तो अपने आप को प्रभु समर्पण कर देते, जो आंतरिक आवाज आती, उसी पर आचारण करते।

जब महात्मा गाँधी जी ने इंगलैण्ड के कपड़े का बहिष्कार करने का भारत को आदेश किया, तो इंगलैण्ड के कारखाने बन्द होने के कारण लबर लोग भूख से तड़पने लगे तो इंगलैण्ड से एक योरपीयन को भारत भेजा गया, कि जा कर महात्मां जी के दोषो को नोट करके अखबारों में प्रकाशित करो, जब वह योरपीयन महात्मा गाँधी के आश्रम में पहुँचा एक सप्ताह पर्यन्त रहने के पश्चात् उस ने चार लेख अखबारों में दिये, कि मैं आया था लेने को, पर स्वयम् ही यहाँ आकर बिक गया, और लिखा महात्मा

गाँधी प्रातः अमृत वेला चार बजे जाग कर प्राणायाम भग्वत भजन करता है, गीता का पाठ करता है उसके मस्तिष्क पर ललाट चमकती है, चर्खा कातता है फिर बकरी का दूध और साथ छुवारे खजूर के खाता है, सारा दिन भारत के हित और कल्याण की सोच में रहता है। यह था भारत के स्वतन्त्र कराने वाला तपस्वी, त्यागी, अनुरागी जिस की राख तक भारत में पूजी गई, उनके जो मन में होता था वही वाणी में, जो वाणी में वह कर्म में लाया करते थे। और भगवान् का अमृत पुत्र बन कर भारत को स्वतन्त्र कराने का यज्ञ रचाया, उसे सफल कर के अमृतपद् को प्राप्त किया, प्रभु स्वयम् अमर है अपने शरणा गत प्यारे को अमर बना दिया।

सज्जनों ! जब भारत स्वतन्त्र हुआ, तो महात्मा जी ने कह दिया था, कि अब क्रांग्रेस का कार्य जो करना था वह पूरा हो चुका है अब इसे तोड़ दो, अब सब भारत के छोटे बड़े भाई-भाई हो जाओ भगवान् के पुजारी बन और सच्चे सपूत बन कर प्राणी मात्र से प्रेम-प्यार करो, जिस प्रकार से जकड़ी हुई भारत को स्वतन्त्र कराया गया उन सद्गुणों को सदैव सामने रखो, सेवक बनकर रहो, सरदार मत बनो। महात्मा गाँधी के अमर पद प्राप्त कर लेने के बाद महात्मा गाँधी की समाधि बनाई गई उसकी पूजा की गई और की जा रही है। और सटेजों पर राज्य अधिकारी चढ़ २ कर ललकार २ कर महात्मा गाँधी के सत्य-अहिंसा को प्रगट किया करते हैं, परन्तु स्वयम् उन पर आचरण करने से कोसों दूर, चोर तो चोरी करे अन्धेरे में, और यह उसका नाम लेवा कांग्रेसी साफ खुले दिन, सूर्य के प्रकाश में, खुले मैदान में, जिनके चारों तरफ पुलिस पहरा देती

है, और इनके लैक्चरों का प्रबन्ध भी पुलिस करती है, अपने काम की स्वयम् प्रशंसा करते हैं और महिमा गाते हैं, हमने यूं किया, यह किया, वह किया काम, गोया आपस में एकदूसरे की प्रशंसा करते फूले नहीं समाते, और तालियां बजा कर कारों पर सवार हो कर एक दिन में कई २ स्थानों का दौरा लगा कर सैकड़ों रुपयों का सफ़र खर्च का बिल बना कर लाखों रुपयों के बंगलों में बिजली के पंखों के नीचे आराम करते हैं कोई अगर दुःखी द्वार पर जावे, तो कुत्ते दर पर रखे हुए है, और उन्होंने अपनी एक ड्रैस बना रखी है, जो कांग्रेस का मैम्बर हो, वह पहने, जिस प्रकार से महात्मा गाँधी की टोपी अंग्रेजों के राज्य में अंग्रेजों के वास्ते तोप-बारूद थी जो भी यही टोपी पहनता था इसके पीछे सी-आई डी के आदमी लगा दिये जाते थे, जो वही टोपी ही भारत के स्वतन्त्रता का कारण बन गई, टोपी क्या थी, सर का ताज, मस्तक का तेज था, जिसने दुःखी पराधीन भारत को स्वतन्त्रता का राज्य प्राप्त करा दिया, पर आज वह टोपी वर्त्तमान कांग्रेसी सज्जनों ने जिस तरह से अपनाई हुई है। वह सारी भारत की प्रजा जानती है, महात्मा गाँधी की टोपी ने प्राणी मात्र को प्रेम, प्यार करना सिखाया था, पर वर्त्तमान के कांग्रेसी मैम्बरान ने सालम ड्रेस नई अपनी बना ली है यह एक नया सम्प्रदाय बन गया है इन की ड्रेस को देख भारत वासी डरते हैं और यह एक दूसरे के दोषों को छिपा कर उलटा महेंमा गाते हैं-क्या पं० जवाहरलाल अथवा डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी ने भी कभी अपनी प्रशन्सा की है- वह सच्चे बापू के जीवन का लक्ष रख कर कार्य करते जा रहें हैं-क्या आप वैसा अमल कर रहे हैं, क्या महात्मा गाँधी हुक्का सिगरेट पीता था ? क्या वह माँस खाता

था, शराब पीता था, जुआ खेलता था, सिनेमा देखता था, यदि वह यह कार्य नहीं करता था, तो क्या आप उनके **नाम लेवा क्या वैसा आचरण** करते हैं ।

"मन तुरा हाजी बगोयम-तुमरा मुल्लां बिगो"

अर्थात्—तू मुझे मुल्लां कहे, मैं तुझे हाजी—ठीक यही वर्त्तमान राज्य अधिकारियों की अवस्था हो रही है । ओ राज्य अधिकारियों ! बापू-बापू पुकारने वालो सुनो, भगवान् का विधान आपके लिये क्या आदेश करता है ।

ओ३म् दधि क्रषणो अकारिषं जिष्णो रश्वस्य वाजि नः
सुरभि नो मुखा कत्प्रण आयुषि तारिषत् ॥

ऋग० मं० ४-३९-६.

भावार्थः—हे मनुष्य ! जो राजा सुगन्ध आदि युक्त घृत आदि के होम से वायु वृष्टि जलादि को पवित्र कर सबके रोगों का निवारण कर के अवस्थाओं को बढ़ाता है और प्रयत्न से प्रजाओं को पुत्र के सदृश्य पालन करता है हम लोगों को पिता के सदृश्य सत्कार करने योग्य हैं ।

अब इस वेद विधान के अनुसार क्या आप प्रजा के पिता तुल्य वर्ताव कर रहे हो, जो आपका मान सम्मान प्रजा पिता तुल्य करे, अपनी पूर्व अवस्था को अपने सम्मुख लाओ, जब आप प्रजा के द्वारों पर, जो तुच्छ से तुच्छ के द्वार पर जा कर, कर जोड़ प्रार्थना करते थे और प्रतिज्ञा करते थे कि हम सेवक बन कर आप सबकी सेवा करेंगे क्या इस वक्त तुम्हारा रहन सहन, खान पान, आन बान-शान जो वर्तमान है क्या पहले ऐसी थी, और क्या वह प्रतिज्ञाएं की हुई यही थीं कि हम लाखों

की कोठियों में आराम से रहेंगे, और खूब धन कमायेगें चाहे तुम मरो या जीवो अरे अपनी भूत अवस्था को सामने रखो।

कैसे—सुनोः—

एक गडरिया का बालक था गडरिया ने बालक को पढ़ाया विद्या समाप्त कर लेने पर वह बालक राज्य का कोषाध्यक्ष बन गया वह अपने कर्त्तव्य पालन करने में सावधान रहता, राज्य प्रजा की नम्र स्वभाव तथा मधुर वाणी से सेवा करता था परन्तु राज्य कर्मचारी इस से दुखी थे। क्यों? यूं यह घुसखोरी न स्वयं करता था और न दूसरों को खाने देता था, अब राज्य कर्म चारियो ने इसके निकलवाने का विचार किया। रात दिन इसी फिक्र में लगे हुए थे।

कोषाध्यक्ष जब राज्य कार्य से निवृत होकर घर जाता तो मार्ग में एक बहुत पुराना कच्चा कोठा था उस के द्वार पर जाकर पहले चारों ओर देखता, कि कोई इधर उधर से आ तो नहीं देख रहा, जब कोई भी दृष्टि में आता न दीखता, तो तत्काल दरवाज़ा को खोल कर शीघ्रता से भीतर घुस कर भीतर से कुन्डा लगा लेता पाँच मिनट के पश्चात फिर जल्दी से दरवाजा को खोल फिर बाहर से दरवाजा बन्द कर घर को चला जाता, ऐसा कार्य कर्म घर से आते और राज्य से घर जाते दोनो समय करता। अब कर्मचारियों ने जो यह कार्य काम करते देखा, तो यह अपने हृदय में भान किया कि यह राजकोष का धन चोरी करके यहाँ कोठे में जाकर रखा करता है—ऐसा ठीक जान कर सब राज्य कर्म चारियों ने मिलकर राजा को भड़काया और उकसाया परन्तु राजा कोषाध्यक्ष के कार्य कर्म से सन्तुष्ट था। परन्तु राज्य कर्म चारियों के बहकाने पर राजा ने कहा, जब तक मैं अपनी आंखो

न देखूं, तुम्हारी बात पर मुझे विश्वास नहीं आता । राज्य कर्मचारियों ने कहा आप हमारे साथ आज सायं काल को चलें आप अपनी आंखो देखें ।

सायंकल को जब कोषाध्यक्ष राज्य कार्य से निवृत होकर घर को चला तो राजा को साथ लेकर कर्म चारी पीछे २ चल पड़े, अब कोषाध्यक्ष जब उस पुराने कोठे पर पहुँचा तो चारों ओर देखने लगा कि कोई देख तो नहीं रहा । अब कर्मचारियों ने कहा महाराज । वह देखा ! यह इसी मकान के भीतर लूटा हुआ रुपया नित्य प्रति रखा करता है । अब राजा-कर्मचारियों सहित वहाँ पर पहुँच गये, राजा ने कहा इस मकान का दरवज्ञा खोलो, कोषाध्यक्ष ने राजा के पाँव पड़ कर प्रार्थना की महाराज ! आप इस मकान का दरवाजा न खुलवावें, अब कर्मचारियों ने मिल कर कहा महाराज ! मकान का दरवाजा अवश्य खुलवावें, सच-झूठ, नेकी-बदी, अब आप को पूरी २ मालूम हो जावे, परन्तु कोषाध्यक्ष बार २ नम्रता से दरवाजा न खोलने की याचना करता। अब राजा को पूरा निश्चय-ज्ञान हो गया कि यह चोर है तो राजा ने कोठे का ताला तुड़वा दिया और भीतर घुस गये । भीतर जा कर क्या देखा एक फटा पुराना लम्बा सा अंगरखा जो गडरिये लोग ओढ़ा करते है कीली पर लटका हुआ है और एक लोटा और एक प्याला मट्टी का-एक चटाई पुरानी पड़ी हैं और कुछ भी नहीं ।

अब राजा ने पूछा, कि तुम दरवाजा क्यों नहीं खोलते थे और इधर उधर क्यों देख रहे थे । कोषाध्यक्ष ने कहा महाराज ! मैं और मेरे माता-पिता भेड़ बकरियों के चराने का कार्य कर्म करते थे, प्रभु की असीम अनुकम्पा दयालता से मैं राज्य का कोषाध्यक्ष बन गया हूँ तो मैं घर से आते और राज्य कार्य से

निवृत होकर जाते अपनी पहली अवस्था के दर्शन कर के आता और जाता हूँ कि मैं पहले क्या था-ता के राज्य शासन पर बैठ कर अहंकार में होकर किसी की हिंसा न कर बैठूं क्यों कि यह शासन प्रभु का दिया हुआ है उसी का यन्त्र बन कर कार्य करुं, और अपने को ऐसा सदा भान करता रहूं कि मैं पहले क्या था. यहाँ से जाते हुए फिर इस पुराने स्थान के दर्शन करके घर जाता हूं कि कहीं राज्य के मद में आकर घर में जाकर किसी की अपने व्यवहार से हिंसा न कर सकूं-और भगवान की दी हुई दात का दुरुपयोग न कर सकूं।

राजा ने जब यह समाचार सुना तो चकित हो गया और राज्य कर्म चारियों के लिए दण्ड देने का विचार करने लगा, तो कोषाध्यक्ष ने कर जोड़ प्रार्थना की महाराज! अब आप इन को क्षमा कर दो, यदि इन को दण्ड दिया गया तो मुझे अति दुःख होगा, भूल से तथा अज्ञानता से इन्होंने यह कार्य किया है यह बात सुनकर सर्व कर्म चारी लज्जित होकर राजा तथा कोषाध्यक्ष से क्षमा याचना करने लगे और सदैव के लिए सभी सावधान-पवित्र हो गये।

ऐ राज्य अधिकारियो अपनी पहली अवस्था को सम्मुख रखो। ताकि राज्य के मद के नशा में आकर न शै न बन जाओ। यदि इस कोषाध्यक्ष की तरह राज्य कार्य करोगे तो अपने भावी जीवन का तोंषा तयार कर लोगे-और राज्य प्रजा भी सुखः शान्ति को प्राप्त कर आप के नाम को उज्जवल करेगी—

अब तुम सी-आई-डी की तरह बन कर रात को अपने २ हल्का के उन गरीब, मुहताजूं, विधवाओं, अनाथों को जो गली सड़ी कोठड़ियों में भेड़ें बकरियों की तरह पड़ी हुई प्रजा अपना जीवन

व्यतीत कर रहे हैं जाकर देखो और आप ऐसे महलों में जहाँ पर यदि तुम्हारा एक एक अंग भी पृथक्-पृथक् कमरा में डाला जावे तो फिर भी कोठियों के कमरे खाली पड़े रहेगें, क्या यही मनुष्यत्व है, यही सहानुभूति, और पिता तुल्य आप लोगों का व्यवहार है सुनो, पढ़ो और संमल जाओ।

कवि क्या लिखता है:—

जब आया चलने का वक्त से तो होता जिस्म है जुदा भी जां से।
न देगी इमदाद कुछ भी दुनियां, तुम्हें बड़ा जिस का आसरा है।
न काम आयेगा मालो दौलत, न काम आयेगा नामो शोहरत।
तुम्हें है कुछ भी फिक्र अज़ी ज़ो, कि एक दिन तुम हो और कज़ा है
तुम्हें है दुनिया का फ़िक्र हरदम, तुम्हें है दुन्या का सदा ही गम
मगर तुम्हारा ख्याल दुनिया को, पहले था और न अब हुआ है
तुम उठ गए जब यहाँ से यारो, तो याद रखो ए दोस्त दारो।
न होगा दुनिया को रंज कुछ भी, कि छोड़ कर कौन यह चला है।
हजारों आये हैं और गए है, हजारों इस वक्त जा रहे हैं।
नहीं है दुनियां का फ़िक्र मुतलिक, कि कौन आया है या गया है।

मनुष्य के जीवन की परीक्षा अन्त में होती है जिस प्रकार सोना तैयार हो कर कीम्यागर की परीक्षा होती हैं उसी प्रकार मनुष्य की मृत्यु के समय इसके जीवन और कर्म की कसौटी होती है, जो मनुष्य जानता है कि मरना किस तरह चाहिये, उसने अपनी आयु को नष्ट नहीं किया जो मनुष्य सदैव मौत को अपने सन्मुख रखता है, वह सुख के मार्ग पर चलता है।

याद रखो ! यदि मरदानगी से मरना चाहते हो तो अपने

अन्दर के सारे दोष एक २ करके निकाल दो, पापों को निकट न भटकने दो, वह मनुष्य मरते समय दुःख अनुभव नहीं करता, जो अपना कार्य पूरा करके तैयार हो बैठता है, किसी के मरने पर यह प्रश्न नहीं पूछा जाता, कि वह किस प्रकार से मरा, किन्तु यह पूछा जाता है कि इसका जीवन कैसा गुज़रा, जिन का जीवन स्वार्थ और पाप कर्मों में बीता है, उसकी मृत्यु पशु से भी भ्रष्ट होती है। पशु तो संसार में प्राणी मात्र की काफ़ी भलाई कर जाते हैं, कोई दूध देता है, कोई बोझ ढोता है, कोई हल और कूवाँ चलाता है, उनके मरने पर उनकी खाल भी काम में आती है, उनके बाल भी लाभदायक होते है, उनका गोबर, लीद, पेशाब, काम आती है! किन्तु जो मनुष्य स्वार्थ और अपने ही हित के लिये जाता है। वह पशुओं से भी बदतर होता है, क्योंकि मरे हुए मनुष्य का तो कुछ काम नहीं आता। कवि ने मनुष्य के जीवन के सम्बन्ध में क्या सुन्दर कहा है।

हम न पूछेंगें। वह मरा कैसे-बल्कि पूछेंगें वह जिया कैसे
हम न पूछेंगे। इसकी हैसियत-बल्कि पूछेंगे दिल की कैफ़ीयत
क्या गरीबों पर आह भरता था-सोज़ पहलू में अपने रखता था
फ़र्ज़ अपने भी उसने पहचाने-हक ने ज़िम्मा लगायजो उसके
आँसू पूछें कभी गरीबों के-काम आया वह बदनसीबों के
उसने हाजत किसी की पूरी की-याकि आफ़त जदो को ढारसदी
उसके लहजा में था तर नम भी-लब पैदा किया, तब सम भी
खुद हंसा और कोई हसाँया भी-कोई दिल का कंवल खिलाया भी
मरसिये उसके गाये किस २ ने, उस पर आँसू बहाये किस २ ने
जिस मनुष्य ने अपने जीवन काल में इन बातों को अपने

ध्यान में रखा है उसी का जीवन सफल समझा जाता है, परन्तु इन बातों का ध्यान तभी रखा जाता है जब मनुष्य अपनी मृत्यु को याद रखे, ऐसा मनुष्य मरना भी अपना कर्त्तव्य समझता है, जो मनुष्य मौत को याद रखता हुआ जीवन की दौड़ लगाता है, वह मौत का सामना बहादुरी और वीरता से करता है जीवन का सद उपयोग करने ही से संसार में मान और आत्मा को सच्ची शान्ति मिलती है।

इसलिये प्यारे ! मौत को मत भूलो, विश्वास रखो, यह हर वक्त तुम्हारे साथ छाया की साथ लगी हुई है जल्दी अपने २ कर्त्तव्यों को पूरा कर लो, क्यों कि यह पता नहीं कि किस वक्त यह आकर गला घोंट ले, बड़ा व छोटा, अमीर, गरीब, रंक व राजा कोई भी इस के पंजा से नहीं बच सकता इसलिए कवि ने कहा है।

न बादशाहों को है रिहाई, न मुखलसी बे कसों न पाई
न शहनशाहों की इसको परवाह, न यहां गदा पर फरेश्ता है
न यहां किसी का कियाम देखा, न यहां किसी का द्वाम देखा
यहां जो आया उसे है जाना-रहेगा कोई न यहाँ रहा है
अमीर देखे,फकीर देखे-दुनिया के शूरवीर देखे
न देखा ऐसा व नेक कोई-अजल के फंदे से जो बचा है
किये इकट्ठे अगर खज़ाने-यहीं रहेंगे न साथ जानें
चलोगे जिस रोज़ खाली हाथों-न कोई जानेगा पास क्या है
किया इकट्टा जो साज़ो समान-रहोगे तुम और भी परेशान
सिवाए आमाल साथ यां से-किसी के कुछ भी नहीं गया है

प्यारे-यज्ञ धर्म है—हमने यज्ञ किया, कर्म तो किया, धर्म नहीं किया, अर्थात धारण नहीं किया, कर्म बाहर के लिए, धर्म अन्दर के लिए है। मैंने हाथ की हथैली ऊपर कर दी, औंधाई तो परलोक को जाएगी, ऊपर किया तो पेट में जायेगी, आंखें बाहर हैं, तो बाहर के संसार को देखता हूं और जब अन्दर करता हूँ तो ज्योतिमय संसार को देखता हूं, यह था कर-उणा-करुणा गुण बन गया भगवान का, क्या भगवान ने कभी हाथ पसारा–नहीं, उणा किया, तो भगवान का हिस्से दार बन गया, आँख खोली तो एब जी ई करता हूं आँख बन्द करता हूं तो तब ऐब बीनी खत्म हो गई।

जब ज्ञान हो गया तो क्रोध काम और मोह कैसा ? एक मात्र सम्यक ज्ञान हो जाने से मनुष्य का काम क्रोध मोह मर जाता है। जल था, खामखाह, दुहराना,"वितन्डा थोड़ी सी बात २ में करना। ज्ञान के बिना सत्य को तमीज नहीं हो सकती संभल के बोलना, अथवा मौन रहना यह अच्छा, मौन से सत्य बढ़ कर है, सत्य तभी आ सकता है जब मौन रहे, जो सारा दिन बोलता रहता है वह तामसिक, राजसिक वृति बन जाता है, मौन सत्य को अपनाने के लिए जरुरी है। लोभ नष्ट करता है ईमान को, बेईमान का परमेश्वर से क्या वास्ता ? जब लोभ आ जाता है तो अन्याय करता है। लोभ बड़ा जालिम है, मोह माँ थी-लोभ बाप है, बुद्धि के अन्दर से दूर करने के सिए लोभ को बड़े तप की जरूरत है। इसका साधन तप है, सन्तोष वह करेगा। जो तपी होगा।

" सत्य बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जिसके हृदय सांच है, उसके हृदय आप ॥ "

तप का स्थान पाँव है **तपः पुनातु पादयो,** सत्य का स्थान सिर है **'सत्यं पुनातु पुनःशिरसी'** सत्य बगैर तप के ठहर नहीं सकता, लोगों ने सत्य वादी सत्य कर्मों को फेल करनेके वास्ते अपना घाटा मंजूर कर लिया, यदि सत्य वादी के अन्दर तप नहीं तो वह बे—इमान हो जायेगा, अगर वह दृढ़ पति है तो छः मास के बाद उस का कार्य बन जायेगा। कारण, परमेश्वर सत्य स्वरूप है आत्मा सत्य है सत्य वह है जिसमें प्रकाश हो, मैंने दीपक जलाया प्रकाश हो गया, इसी तरह से सत्य जब दृढ़ हो जाता है तो सत्य से प्रकाश होता है। सत्य शरीर में नहीं रहता शरीर की छाया खाली होती है।

"मनः सत्येन शुध्यति"

सत्य मन में रहता है अन्नमय शरीर, प्राणमय शरीर, मनो मय शरीर, मन मनोमय शरीर में होता है। मन बड़ी ज्योति है ज्योति का काम है सुराख़ देखा नहीं, बाहर निकल गई, जब अन्दर ज्योति जगी तो माथे पर आँख पर तेज होगा, जबान में होगा ओज ! जब वह बोलेगा दूसरे को बोलने का साहस नहीं होगा। विलगंटन भारत का वायसराय था जब तक वह भारत में रहा महात्मा गांधी के सन्मुख नहीं आया था, क्यों ! वह यह कहता था कि इसके सामने जाने पर यह जो कुछ चाहेगा, मुझ से लिखवा लेगा, क्यों कि इसकी वाणी में जादू है। प्रकाश लोगों के अन्दर प्रकाश कर देता है, तप स्वर्ण, चाँदी को खरा-खोटा बना देता है अग्नि जैसा लाल बना देता है कोयला अग्नि में पड़ा तो अंगारा बन गया, अब अग्नि की शक्ल है कोई पास नहीं आ सकता। खोट निकाल कर अब खरा कर दिया है। सत्य के अन्दर खरापन है,लोभी मनुष्य सत्यवादी नहीं होसकता।

है तप नहीं, तो सत्य नहीं आ सकता, जहां सत्य नहीं ज्ञान कहां ? अब कैसे आदमी करे।

जो मनुष्य पढ़ लिख कर बड़ा विद्वान बन कर शब्दार्थ के आडम्बर में रह जाता है और भगवान के योगाभ्यास को न जाना, न किया वह कैसे परमेश्वर को प्राप्त कर सकता है। ८० प्रतिशत लोग परमेश्वर की पूजा करते हैं पर शोक क्यों नहीं छोड़ता।

"जो प्रभु गीत प्रीत संग लावे,
तिस को शोक निकट न आवे"

शब्दों के आडम्बर के अन्दर रहने वाले मनुष्य का मन कभी नम्र नहीं हो सकता, सदा कठोर रहता है, बड़ा आसान तरीका है मन को उलटा दो, नम्र बन गया, झुक जाओ, वह चीज जो हम माता के गर्भ के साथ लाए थे मन को विषयों से हटा कर प्रभु चरणों में झुका दो।

वेद में ईश्वर के वेग की मन के वेग से उपमा देनी पड़ी।

अनेजदेकम् मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन पूर्वमर्शत्।

यजुः आ० ४० मं० ४

मन का भगवान से मुकाबिला हो गया, वह भगवान से मिलने न दे, भगवान गुण गान न करे, भगवान सृष्टि रचता है, मन भी रचता है। योग का अर्थ है मिलाना, योग नुसखा है। योग का प्रयोग करो आत्मा का परमात्मा के साथ मिलाप करो। मन को उलटा दो।

भोग और योग—हम भोग में पड़ गये, वह योग नहीं।

यक कदम अज़ खुद गुज़श्तन मंज़ल अस्त

अर्थात्—एक कदम अपने से ऊपर उठना मंजिल है योग में एक कदम ऊपर हो जाएँ, तो योग शुरु है भोग का काम भोग योनि में ले जायेगा। पशु कीट पतंग आदि में ले जायेगा।

नम्रता

दृष्टान्त नं० १

महात्मा संत बैठे थे एक धनी आया कहा मेरा मन ऐसा है, वैसा है, भगवान से मिला दो, योग सिखाओ बहुत कहा सन्त ने कहा अच्छा तुम मेरा काम कर दो, मैं तुम्हारा काम कर दूँगा सेठ समझा, हजार दो हजार रुपया मांगेगा, बोला बहुत अच्छा कोयला पड़ा था सन्त ने उठाकर दिया, साबुन भी दे दिया और कहा कि इस को सफेद कर दो, धनी कहने लगा कैसे चिट्टा करूँ, चाकू साबुन पानी से तो हो नहीं सकता, यह तो भगवान भी इसे सफेद नहीं कर सकता, सन्त ने कहा, मैं भी तुम्हें नहीं सिखाता, धनी बहुत गिड़गिड़ाया सन्त ने कहा, मैं इसे सफेद कर दूँ, सेठ बोला, भगवान भी यह काम नहीं कर सकता, आप कैसे करोगे, सन्त ने कोयले को उठा कर अग्नि में डाल दिया, थोड़ी देर बाद निकाला तो कोयला अग्नि रूप लाल हो गया था।

अब हृदय मन कैसे शुद्ध हो ?

दृष्टान्त नं० २

एक रोगी वैद्य हकीम के पास चिकित्सार्थ गया, हकीम ने नुस्खा लिख दिया, और कहा, पंसारी से जाकर दवाई ले लो अब रोगी पंसारी की दुकान पर पहुँचा नुस्खा दे कर कहा मुझे यह दवाई संग्रह कर देवें। पंसारी ने वह नुस्खा बालक को दे दिया, और कहा, यह नुस्खा संग्रह कर दे, बालक प्रत्येक दवाई

के खाना से दवाई तरतीब से निकाल कर संग्रह कर रहा है पिता ने कहा क्यों बेटा इस खाने में दवाई नहीं है, जो हाथ से बार बार टटोल रहा है, बालक ने कहा इस में खुदा का नाम है।

प्यारे! अब सोचो, परमात्मा कहाँ हुआ, जहां खल है। आकाश की न्याईं हृदय साफ और शुद्ध हो जाए, वह कैसे फारसी कवि ने कहा है—

खाही की बशवद दिल तो चूं आईना,
दाह चीज़ बेरुने कुनज़े दारुने सीना।
बुख्ले[1], हसदो[2], जलमो[3], हरमो[4], गैबत[5],
बुगजो[6], तमाओ[7], हिरसो[8], रियाओ[9], कीना[10] ॥

अर्थात्—यदि तू चाहता है, कि तेरा हृदय शुद्ध, पवित्र, निर्मल, शुद्ध शीशा की तरह हो, तो तू इन दस दोषों को अपने हृदय से बाहर फैंक दे, निकाल दे, कहते हैं हजरत मूसा ने खुदा से प्रश्न किया—

मूसा ने पूछा ऐ यारे खुदा।
मकबूल तेरा कौन है बन्दो में सिवा॥

उत्तर मिला "बन्दा हमारा वही है जो ले सके और न ले बदी का बदला"।

कवि लिखता है—

खुदा के बन्दे तो हैं हजारों, बनों में फिरते हैं मारे।
मैं उनका बन्दा बनूंगा जिसको, खुदा के बन्दों से प्यार होगा

---

१. कंजूसी। २. जलना। ३. हरामखारी। ४. चुगलखोरी। ५. शत्रुता। ६. लोभ। ७. बेजा ख्वाहिश। ८. मक्कारी। ९. बदले के भावना। १० अत्याचार।

फारसी का कवि लिखता है—

हासिल ना शवद तुरा रज़ाए,
ता खातिरे वन्द गान न जोई।
खाही कि खुदाए वर तो बखशद,
बा खलके खुदाए कुन न कोई॥

अर्थात्—ऐ मनुष्य ! तू परमात्मा की दया को प्राप्त नहीं कर सकता जब तक तू इसकी प्रजा से प्रेम न करे, यदि तू चाहता है कि परमात्मा की दया तुम पर हो, तो तू उसकी प्रजा के साथ प्रेम और सहानुभूति कर—

दृष्टान्त नं० ३

एक सन्त महात्मा ने गृहस्थी के द्वार पर भिक्षार्थ पहुँच कर अलख जगाई, तो देवी ने कहा, मुझे आत्मज्ञान का उपदेश दो। सन्त ने कहा कि उपदेश कल दूँगा, देवी ने कहा, बरतन साफ, सुथरा कल लाना, खीर, हलवा इत्यादि पदार्थ बनाऊँगी। दूसरे दिन सन्त महात्मा ने बरतन उठाया, उस में कूड़ा कंकड़ मैला डाल लिया, और गृहस्थी के द्वार पर पहुँचा। देवी खीर का भरा हुआ कटोरा, हलवा, इत्यादि परोस कर थाली में लाई, और कहा, लो महाराज ! अब सन्त ने बरतन आगे बढ़ाया, तो देवी ने देखा और कहने लगी महाराज ! यह मैला कुचैला कंकड पत्थर और मैले से भरा हुआ है, लाओ मैं इसे पहले साफ कर दूं। अब सन्त ने कहा, न माता ! इसी में डाल दो, तो देवी ने कहा महाराज यह उत्तम पदार्थ शुद्ध, पवित्र तैयार किये हुए ऐसे गन्दे बरतन में कैसे डालूं यह बने बनाये उत्तम पदार्थ भी विष हो जायेंगे।

सन्त ने कहा माता !—तेरे यह उत्तम पदार्थ जो शरीर

का भोग ही है, यह शरीर नाशवान है, इसके हित और कल्याण सुख अर्थ तो आप इस कदर बर्तन को साफ सुथरा करने पर यह पदार्थ डालेगीं, परन्तु जो आत्मा जन्म जन्मान्तर से अपने अपवित्र कर्मों, और कुसंस्कारो और मैल कुचैल से भरपूर होने के कारण आवागमन के चक्कर में फंसा हुआ नाना प्रकार की भोग योनियों का ग्रास बना हुआ है, उसके छुटकारा पाने के वास्ते आत्म ज्ञान जो चाहती है, बिना कुसंस्कारो के निकाले और साफ शुद्ध हृदय-मन के आत्म ज्ञान कैसे दूँ वह तो अन्दर पड़कर नष्ट भ्रष्ट हो जायगा, और कहा भगवान् की प्राप्ति का राज़ तो कख तले पहाड़ है। बच्चा का माता की गोद में जाना तो आसान है, इसलिये कहा है।

सोपायनो भवः—

कब जब अंहकार रहित है। तो वह बच्चा नखरे करता आवे--तो माँ को प्यारा लगता है। अहंकार हो, तो तमाचा लगे।, जो भक्त अहंकार रहित जावे, वह प्रभु को प्राप्त कर लेवे. सन्त ने कहा जाओ अब उपदेश हो गया।

देवी ने कहा महाराज ! मैं अभी आपके उपदेश को नहीं समझ पाई, वह कुसंस्कार और मैल कुचैल कौन सी है जिसके दूर करने पर आत्म ज्ञान हो सकता है। सन्त महात्मा ! बेटी काम क्रोध, लोभ, इत्यादि यह विषय जन्म जन्मान्तर से ही मनुष्य का सांग किये हुए है, यह विषय अन्दर नहीं जाने देते, कैसे किया जावे ?

बुल्लेआ, खुदा की पावना, इथों पट ते उथे लावना।

विषय के त्याग से शै पाले, माँ बाप बन्धुओं से हटे, और योगाभ्यास करे, अपने आपको प्रभु अर्पण कर दे, फिर

आत्मा ज्ञान पाले, प्रकाश प्राप्त हो जावे, यह है तो आसान। पर सर कैसे झुकाएँ, कवि ने कहा है।

"दिल के आईने में है, तस्वीर यार की
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली"

सन्त कबीर ने कहा है।

भक्त हमारे दास हैं, हम भक्तन के दास।
हम भक्तन में यूं बसें, जूं फूलन में बास॥

हे सविता देव ! हम आज से ही इस अग्नि को प्रदीप्त करेंगे विवस्वतों द्वारा तमो निवारक, ज्ञान किरणों द्वारा इस अग्नि को प्रज्वलित करना प्रारम्भ कर देगें। जैसे सूर्य की किरणों द्वारा ही संसार की सब प्रकार की ज्योतियां प्रदीप्त और प्रकाशित होती हैं, वैसे उस ज्ञान सूर्य सविता परमात्मा की किरणों द्वारा ही हम अपनी आत्मग्नि को प्रदीप्त करेंगे। सत्य ज्ञान देने वाले सब वेद, आदि ग्रन्थ सब सत्य का उपदेश सब गुरु आचार्य हमारे अन्दर मन की सब सात्विक वृतियाँ, यह सब उसी ज्ञान सूर्य की भिन्न २ क्षेत्रों में फैली हुई किरणें हैं, विवस्वत है। हम इन द्वारा आज से अपनी आत्मअग्नि को प्रतिदिन प्रदीप्त करते जायेंगे-यही हमारे उद्धार का सीधा साफ और चौड़ा मार्ग है। ओ३म् शम्।

———

ओ३म्

ओ३म् असद् भूम्याः सम भवत तद्या मेति महद् व्यचः।
तद् वै ततो विधू पायत प्रत्यक कर्त्तार मृच्छतु ॥

(अ ४-१९-६)

शब्दार्थः— पाप अधर्म भूमि से उत्पन्न होता है, और वह बड़े भारी रूप में फैल कर द्यौ लोक तक चढ़ जाता है। किन्तु वहाँ से उतना बढ़कर भी वह निःसन्देह कर्त्ता को सन्ताप देता हुआ उसके प्रति उल्टा लौट कर उस कर्त्ता पर ही आ पड़ता है।

ए मनुष्य! क्या तुम समझते हो कि संसार में असत्य की पाप की ही विजय हो रही है? सच यह है कि प्रभु अपने इस संसार में बेशक कुछ देर के लिये पाप को बढ़ने पकने देते हैं। परन्तु समय आने पर उसका विनाश तो अवश्यंभावी होता है। बुराई का वृक्ष खूब फलता फूलता है, पर वह फिर जड़ सहित उखड़ा ता है। भूमि से उठकर पाप कभी २ सारे अन्तरिक्ष में फैल जाता है और इतना बढ़ता है कि वह द्यो लोक के प्रकाश को भी ढ़क लेता है। तब मनुष्य हा हा कार मचाने लगता है। पर अगले ही क्षण वह छिन्न भिन्न होने लगता है और लौटता हुआ अपने उठाने वाले के लिए दुःख की प्रतिक्रिया और सब का सब वहीं विलीन हो जाता है। सब अधर्म भूमि से उठता है, अन्धकार अज्ञान, तथा स्थूलता से उत्पन्न होता है। वह अपनी स्थूल शक्ति-पशु शक्ति को बढ़ाता हुआ सब तरफ से फैलता है। अपने इस स्थूल बल द्वारा वह पाप के विरुद्ध उभड़ने वाले सब लोगों को को दबा देता है, उसके इस दामक स्वभाव के कारण धीरे २ संसार भर में सब कही उस की ही दुँदुंभि बजने लगती है, उसी का सिक्का चलने लगता है। संसार में बड़े २ [illegible] पुरुषों का बड़े इश्वर

परायण महात्माओं का दिव्य तेज भी उस के अंधकार के सामने ढक सा जाता है। तब सब भयभीत साधारण लोग बिना चूं चां किये उस के अंधेरे राज्य को चलाते जाने में ही अपना हित व स्वार्थ देखने हैं, यद्यपि उस के अंधेरे में वे बड़े बेचैन होते जाते और उन की घबराहट बढ़ती ही जाती है। उस समय इश्वरीय नियम की अटलता को देखने वाले बिरले ही होते हैं, जो घबराते नहीं, जो कि प्रसन्न होते हैं कि पाप जितना अधिक से अधिक बढ़ सकता है। वह बढ़ चुका है और अब उस के विनाश काल का प्रभात होने वाला है, उस ऊंचाई से अधर्म के खोखले आधार पर खड़ा किया वह सब पाप का ठाठ तो गिरता ही है, अपने बोझ से स्वयमेव गिरता ही है पर वह अपने कर्त्ता की अपने खड़े करने वाले को सन्ताप पहुँचाता हुआ गिरता है। वह लौट कर उसी पर गिरता है और उसी को साथ ले कर भूमिसात हो जाता है। "कैसे पाप अपने करता पर लौट कर गिरता है"

दृष्टान्त

एक यात्री तीर्थ स्नान करने अर्थ हरिद्वार पहुँचा, गंगा के किनारे पर बैठ कर गंगा से यूं कहा, कि गंगा मय्या! तू तो बड़ी पापिन है, गंगा बोली, कैसे मैं पापिन हूं! यात्री ने कहा, संसार के लोग पाप कर्म करते हैं वह पाप कर्म यहां आ कर तेरे में डाल जाते है अतः तू बड़ी पापिन है। गंगा ने कहा कि यह आपका कथन सत्य है, कि लोग पाप कर्म मेरे में डाल जातें है, परन्तु मैं वह पाप समुन्द्र को दे देती हूं। मैं नित्य की तरह शुद्ध पवित्र निर्मल रहता हूँ।

अब यात्री समुन्द्र के पास गया, और कहा तू बड़ा पापी है, समुद्र ने कहा कैसे मैं बड़ा पापी हूँ? यात्री ने कहा, संसार में

लोग पाप कर्म करते है वह पाप कर्म गंगा को दे जाते हैं, और गंगा तेरे अर्पण कर देती है। समुन्द्र ने कहा कि यह ठीक है, गंगा में लोग पाप डाल जाते हैं और गंगा मुझे दे देती है, परन्तु मैं तो सूर्य भगवान् को दे देता हूं। और मैं सदैव की तरह खारी ही खारी रहता हूँ। अब यात्री सूर्य के पास गया, और कहा, कि तू बड़ा पापी है उसने कहा कैसे, यात्री ने कहा, लोग गंगा में अपना पाप डाल जाते हैं गंगा समुन्द्र को देती है समुद्र से आप ले लेते हो, अतः आप बड़े पापी हैं । अब सूर्य ने कहा, कि आपका कथन सत्य है लोगों का पाप गंगा ले लेती है वह समुन्द्र को देती है और समुन्द्र से मैं लेता हूँ। पर मैं तो वायू को दे देता हूं और मैं सदैव की तरह प्रकाश युक्त रहता हूँ। अब वायु के पास यात्री गया और कहा तू बड़ा पापी है वह बोला कैसे ? यात्री ने कहा, लोग गंगा में पाप छोड़ जाते है गंगा समुन्द्र को दे देती है समुन्द्र सूर्य को देता है और सूर्य से तू ले लेता है, अतः तू बड़ा पापी है। उसने कहा, मैं मानता हूँ सूर्य से पाप मैं लेता हूँ पर मैं वह पाप बादलों को दे देता हूं मैं स्वयम् सदैव समान अवस्था शुद्ध पवित्र रहता हूँ। अब यात्री बादलों के पास गया, और कहा तुम बड़े पापी हो, उन्होंने कहा कैसे ? यात्री बोला लोग गंगा में पाप डाल जाते है, गंगा से समुद्र ले लेता है, समुद्र से सूर्य लेता है, सूर्य से वायु लेता है वायु तुम को दे जाती है अतः तुम ज्यादा पापी हो अब बादलों ने कहा कि हम मानते हैं पापी लोगों का पाप हमारे पास पहुंच जाता है पर हम अपने पास नहीं रखते हम अमानत की खियानत नहीं करते, किन्तु जिस घर का पाप हमारे पास आता है, हम सूद, ब्याज सहित बढ़ा चढ़ा कर उसके घर में जाकर डाल देते हैं।—कहावत है, जैसी करनी वैसी भरनी—

पाप के कारण

कहा जाता है, कि कुछ वर्ष पूर्व भारत की अवस्था ऐसी थी कि सभी एक दूसरे से प्रेम और प्यार से रहते थे, सहानुभूति शुद्ध हृदय, पवित्रता, त्याग भावना से भरपूर, कार्य व्यवहार धर्म युक्त होते थे, एक दूसरे पर विश्वास, जो कुछ मुंह से कह देते थे, वे उसी के पूर्ण करने पर जान तक खेल जाते थे, और लेन-देन में कोई लिखा पढ़ी नहीं होती थी, सब कार्य केवल वाणी के विश्वास पर चलते थे, कोई भी झूठी सौगन्ध न खाता था । एक ग्राम या शहर की बेटी को सारे ग्राम व शहर की जनता अपनी बेटी की तरह पूजती थी, कोई इसकी ओर बुरी दृष्टि से न देखता था, परन्तु वर्त्तमान की अवस्था देखो ।

हम जहाँ भी जाते हैं चार आदमी आपस में बैठे हों तो हमें उन से यही सुनाई देता है कि संसार के फिक्र और चिन्ता इतनी बढ़ गई है कि पल भर भी चैन नहीं पड़ती, पहले एक कमाता था और कुटुम्ब खाता था, अब कुटुम्ब कमाता है तो अपनी पेट पूर्ति भी नहीं होती अब नित्य नया बखेड़ा कोई न कोई खड़ा हो जाता है न दिन को आरा मिलता है न रात को चैन, निःसन्देह यह बात सोलह आने ठीक है, कैसे ? घरों में देखो तो निकट से निकट के सम्बन्धी एक दूसरे का मुंह तक नहीं देखना चाहते, बाप-बेटे की नहीं बनती, पति-पत्नी की अन बन है, भाई २ से द्वेष करता है यहाँ तक एक दूसरे का रक्त चूसने को तैयार हैं शेष सम्बन्धियों का तो कहना ही क्या, घर से बाहर निकले तो गली, कूचा बाज़ार में झगड़े, भला ऐसी अवस्था में चैन कहाँ प्राप्त हो और शान्ति कैसे हो ?

कवि ने क्या सुन्दर कहा है—

जीने का अब मज़ा नहीं हिन्दुस्तान में
बूढ़े में उन्स है न महबत जवान में
भाई से भाई माँ से बेटा उलझ रहा
इक दूसरे को दुश्मने जां है समझ रहा
वह जां निसारियों की रिवायात मिट गई
वह सुलोहब आशती की हिकायत मिट गई
शौहर से बीवी-बीवी से शौहर है बदगुमां
है बाप का बना हुआ बेटा अदू' जां
भारत के घर हुए खाली सकून से
है सीढ़िया रंगी हुई शौहर के खून से
बने उसूले मेहरो महबत के और ही
बिगड़े हुए हैं हिन्द के लोगों के तौर ही
ऐ अक्ल, ऐ समझ, ऐ फ़ारस्त तू ही अब आ
भारत निवासियों को ठीक राह आ दिखा

अब हमने यह विचार करना है कि ऐसी अवस्था क्यों उत्पन्न हो गई है, इस का कारण यह कि मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य से हट कर विषय विकार का ग्रास बन गया है, बाहर की सोचता है निकट और भीतर के जो शत्रु हैं उन पर दृष्टि नहीं डालता, वह हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार इत्यादि। यह भीतर के शत्रु हैं। जो मनुष्य पाप और बुराइयों से बचकर शान्ति प्राप्त करना चाहता है वह इन शत्रुओं पर विजय पावे।

---

१. शत्रु।

वर्त्तमान राज्य शिक्षा की ओर दृष्टि डाली जावे, बजाये इन के इन शत्रुओं के दमन करने और मनुष्य बनने की शिक्षा दी जावे। उल्टा इन शत्रुओं का ग्रास बनाया जा रहा है। बावजूद के पहले इस कदर भारत में सोसायटीयां न थीं और न इतने सम्प्रदाय। जितने वर्त्तमान काल में हैं—मन्दिरों, शिवालय, गुरुद्वारों की संख्या बढ़ गई है कथा कीर्तन भी काफी होते हैं परन्तु विचार दृष्टि से देखा जावे, यह धर्म सोसायटीयां इत्यादि भी विषय विकार के उत्पन्न करने में सहायक हो रहो हैं। जिन शत्रुओं का ऊपर वर्णन किया गया है। और देखें कि यह कैसे हम पर आक्रमण किये हुये, हमें पाप और बुराइयों के गड्ढे में डाल रहे हैं।

(१) काम—यह सब से महान शत्रु है, इस पर विजय अधिक से अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता है हमारे पूर्वजों शास्त्रों वेदों ने बाल काल अवस्था से ही इस पर विजय प्राप्त करने इस पर आचरण करने का आदेश किया है।

(i) पचीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहे, बनावट, सिंगार न करे, सुरमा न लगावे, सुगन्धित पदार्थों का सेवन न करे। छाता, जूता तक का प्रयोग न करे। सादा भोजन, सादा वस्त्र पहने, लड़के लड़कियां इकट्ठे न रहें, परन्तु वर्त्तमान की अवस्था देखो स्कूलों, कालेजों, पाठ शालाओं में जाइये, जो पहरावा और जो फैशन लड़के लड़कियां करते हैं, देखते ही आंखें लज्जा से झुक जाती हैं उन की बनाव सिंगार चाल, ढाल ऐसी की जाती है कि दूसरों की दृष्टि स्वयं खिची आवे, इस बुराई को वर्त्तमान काल में गुण की दृष्टि से देखा जा रहा है, सिनेमा में थियेटरों में, पार्टियों में, जहां भी जाओ ब्रह्मचर्य का दिवाला निकाला जा रहा है भला जिस मकान की नींव में सजावट की

जावे, फिर उस पर दूसरी तीसरी मंजिल क्यों कर जा सकेगी। वर्त्तमान काल में स्वयं माता पिता और पति अपनी पत्नी तथा जवान लड़कियों, बहनों को साथ लेजाकर सिनेमा के निर्लज्ज दृश्य देखते और दिखाते हैं। ऐक्टर और ऐक्ट्रैस जो फैशन बना कर परदा पर आती हैं, जो बुरे चित्र को वह सम्मुख लाते हैं उन्हें देखने वाली लड़कियां उस की नकल करती हैं, यही दृश्य उन लड़कियों के भावी जीवन को बरबाद करने के वास्ते जादू का असर कर जाती है। कैसे—

एक नवयुवक पत्नी को साथ लेकर सिनेमा देखने गया ऐक्टर और ऐक्ट्रैस ने खेल करते हुए शराब पिया और काम वासना की क्रियायें कीं दोनों पत्नि पति को यह खेल प्रभावित कर गया सिनेमा से लौट कर दोनों ने शराब पिया और वैसे काम वासना की क्रीड़ा की पत्नी गर्भवती हो गई, प्रसूत होने पर लड़की उत्पन्न हुई जब वह युवावस्था में हुई वैश्या बन गई।

(ii) ऐक्ट्रैसों के चित्र तैयार हो कर गली २ कूचा २ बिक रहे हैं और दिवारों पर लगाये जाते हैं और सैकड़ों फिल्मी रिसाले निकलते हैं, जिन में नंगी देवियों के चित्र और बुरे २ रूप खींचे जाते हैं। दूर क्यों जाते हो, आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता अखबार प्रताप, अखबार मिलाप, को देखो जिन अखबारों का पाठ आर्य समाज अपने मन्दिरों में करती है। किस कदर चित्र कारी की जाती है कोई आर्यसमाज का नेता है जो इन भले पुरुषों से कहे कि तुम ऋषि दयानन्द का नाम लेवा और उसे गुरु मानते हो, और उस की वेदी पर ब्रह्मचर्य और देश के उत्थान का उपदेश करते हो, आने वाली जाति का किस कदर पैसे के लोभ में आकर उसका जीवन पतन कर रहे हैं। ऐसे

लोग जो मातृ शक्ति के ऐसे गंदे निर्लज चित्र खींच कर धन के

लोभ वश भारत के नौजवानों के जीवन को पतन करते हैं और जो माता पिता अपने बच्चों और लड़कों और स्त्रियों को लेजाकर सिनेमा दिखाते हैं वह उन के सदाचार के भ्रष्ट करने वाले और महा शत्रु हैं।

लोग तप-त्याग भूल गये। व्यक्ति समष्टि के लिये बलिदान करना भूल गया है और वर्तमान व भविष्य को प्राचीनकाल की आधार शिला पर कसना और वैदिक मर्यादा पर चलना भूल गया। दूसरे देशों की नकल से हमारा काम नहीं चल सकता। संसार का इतिहास बतलाता है कि जहां अधिभौतिकता बढ़ जाती है वहां विनाश अवश्यम्भावी है।

वेद पूर्ण और नित्य है। उन के अनुकूल चलने से संसार का बेड़ा पार होगा। हम अन्य संस्कृतियों की उत्तम बातों और सत्य सिद्धान्त मानने के लिये सदा तैयार हैं। परन्तु हम प्राचीन संस्कृति की हितकर बातों को छोड़ने के लिये कदापि तैयार नहीं। हम चाहते हैं कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में आर्य संस्कृति की रक्षा के लिये पूर्ण ध्यान दिया जाये, जिस से कि इस कोरे भौतिकवाद में ही फंसे न रहें, संसार में अध्यात्मिक उन्नति कर सच्चा सुख और शान्ति फैलावें।

ज्यों ही हम नवयुवक-युवतियों को उपदेश देते हैं कि भौतिकवाद के पीछे दौड़ना छोड़ कर वैदिक आध्यात्मवाद और ब्रह्म विद्या की ओर अग्रसर होने में संसार का कल्याण है, त्यों ही हमारे नवयुवक-युवतियां चौंकते हैं। और कहते हैं कि " अजी ! कहां की पुरानी ब्रह्म विद्या की बातें आप हमें सुनाने चले हैं। हमें तो यह बातें बिलकुल अच्छी नहीं लगतीं। हम तो " वैजयन्ती माला " "राज कपूर" " निम्मी " " सुरैया " " बेगम पारा " " दिलीप कुमार " " अशोक कुमार " या

अमेरिका के हालीवुड से ख्याति प्राप्त किये हुये "शिब्बो" आदि "तारक तारकाओं" की साहसपूर्ण प्रेम मयी कथायें सुनाइये हमें तो उन के "फैशन" रहन सहन के ढङ्ग" "और वार्तालाप" सुनने में मजा आता है। हमें तो "सक्रीन" "फिल्म इंडिया" "फिल्म-स्टार" "चित्रपट" आदि समाचार पत्रों के पढ़ने में सुख का अनुभव होता है। हमें तो भारत के "फिल्मस्तान" जैमिनी स्टुडियो" और अनेक फिल्मों के शुटिंग" की बातें बहुत प्यारी लगती हैं। हमारे भारतीय नवयुवक-और नवयुतियां भौतिकवाद में इतने फंस गये हैं कि इस शरीर के रूप-रंग और हाड-मांस के चमड़े पर मोहित हो कर अपना कर्त्तव्य कर्म भूल गये हैं। आध्यत्मवाद और ब्रह्म विद्या की चर्चा तो इन्हें पसन्द नहीं आती। इन को लाख समझाओ कि आत्मा की अवहेलना करने वाले और क्षणभंगुर शरीर को सब कुछ समझने वाले व दिन रात धन और रूप-रंग के पीछे दौड़ने वाले भौतिकवादी शीघ्र नाश को प्राप्त हो जाते है। पर यह बातें इन को खबी कर प्रतीत नहीं होतीं।

संसार का इतिहास और भारत का महा भारत काल से अब तक का इतिहास इस बात का साक्षी है कि ज्यूं २ मनुष्य भौतिकवाद में फंसते गये त्यों २ इनके सम्राज्यों का नाश होता गया। इन्द्रियां लोलूप होने के कारण बड़े २ सम्राट नाश के मुख में और पाप के गहरे गर्त में गिर गये, परन्तु हमारे देशवासी अब भी इतिहास से शिक्षा नहीं लेते। अमेरिका, यूरोप भुक्त भोगी बन कर अपनी करवटें बदल रहा है पर हम पश्चिमी सभ्यता के पीछे दौड़ कर उस की दुःख दायनी भौतकवादित नकल कर रहे हैं। हम कहते हैं कि प्रथम पन्च वार्षीय योजना में तुम ने अरबों रुपये इसी भौतिक उन्नति के लिये खर्च किये

परन्तु वास्तविक सुख चाहते हो और वास्तविक शान्ति चाहते हो तो भौतिक उन्नति के साथ २ आध्यत्मिक उन्नति के लिये यह श्रम करो-ब्रह्मचर्य प्रसारक नैतिक उन्नति करने वाले विद्यालय खोलो-परन्तु कोई इस ओर ध्यान नहीं देता । याद रखो, कि यदि सुखी रहना चाहते हो, तो पृथवी की उन्नति कर उसे उर्वरा बनाओ । अधिक अन्न उत्पन्न करो रोशनी उद्योग-धन्धों के काम में लाओ, सूर्य्य व अग्नि के तेज से सारा विश्व गतिमान हो ही रहा है, अतः उस के बल को राष्ट्र के उतकर्ष के लिये लगाओ-चौथी बात स्मरण रखने की यह है कि प्रजाको पराक्रमी सदाचारी और दानी बनाओ जब किसी राष्ट्र की प्रजा सदाचार खो देती है और स्वार्थी लोभी पद लोलूप हो जाती है तो वहां पर पृथिवी माता उर्वरा होना, जल बर्षा करना, अग्नि उत्कर्ष करना छोड़ देती है । लक्ष्मी ऐसे राष्ट्र में नहीं ठैहरती । लक्ष्मी आप के पास आज कल के छल कपट के भौतिक उपायों से नहीं टिक सकती । लक्ष्मी तो उसी सदाचारी मनुष्य में है जो झूठ-छल, कपट जूआ व्यभिचार से परे रहता है ।

कवि कहता है—

———

करे नफ़स को अपने जेर नगीन ।
तो खुद अपना गमखार है बिलयकीन ।।
मगर जिस को काबू नहीं नफ़स पर ।
तो अपना ही दुश्मन है वह सर बसर ।।

———

एक ब्रह्मचारी शहर के कूचे में जा रहा था ब्रह्मचारी की दृष्टि वैश्या पर पड़ी वैश्या ने उसे अपने पास बुलाया और कहा

तु क्या देगा ब्रह्मचारी ने कहा घोड़ी-गाय को घोड़ा-बैल मिलाने पर तो घोड़े वाला बैल वाला दाम लेकर मेल मिलाता है पशु के वीर्य की इस कदर कीमत होती है पर मनुष्य वीर्य जैसा अनमूल्य रत्न भी देवे और दाम भी साथ देवें—धिक्कार है ऐसे मनुष्य को जो पशुओं से भी बदतर काम करता है जो कुत्ते कुत्तियों की भांति अपने वीर्य का नाश करता है यह है वर्तमान भारत की शिक्षा का परिणाम—

(२) क्रोधः—वर्तमान काल में इसका राज्य है क्योंकि यह काम से उत्पन्न होता है। काम से ध्यान मारा जाता है, ध्यान से बुद्धि मारी जाती है-बुद्धि के नाश का यह गुरु है, इसके राज्य शासन होने पर मनुष्य मनुष्य, मनुष्य नहीं रहता है, किन्तु पशु से भी बदतर हो जाता है दीवाने कुत्ते की तरह फिर दूसरों को काटता है, अपने पराये भले बुरे की तमीज नहीं रहती, दूसरों को जलाने से पहले स्वयम् जल जाता है जिस प्रकार दिया सिलाई दूसरों को जलाने से पहले स्वयम् जलती है, वर्तमान शिक्षा का शृङ्गार है—कैसे ?

क्रोधी मनुष्य को वीर माना जाता है, जो अध्यापक, जो कारखानादार, जो राज्याधिकारी माथे पर त्योरी चढ़ाये रखे, बात २ पर बिगड़ पड़े, उस को माननीय समझा जाता है और जो मनुष्य शान्त स्वभाव, नम्र स्वभाव, मधुर भाषी, प्रिय बोलने वाला हो, उसको घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, उसे बुद्धू कहा जाता है। जो मनुष्य धीर, गम्भीर, सहनशील हो उनको कायर, भीरु नाम से पुकारा जाता है। कवि लिखता है—

———

लगाएं जो महसूस अश्या से मन ।
ताअल्लुक बढ़े इन से और हो मगन ॥

ताअल्लुक से ख्वाहिश का हो फिर जहूर।
हो ख्वाहिश से गुस्से का दिल में फतूर॥
हो गुस्से से फिर तैरगी रू नमा।
असर तैरगी को है! सहवो ख़ता॥
इसी सहव से अकल हो पायेमाल।
गई जब अकल समझो आया जिवाल॥

———

(३) लोभः—लोभ को पाप का बाप कहा गया है यह संसार भर की अशान्ति का मूल कारण है; नित्य नये युद्धों का कारण भी यही देवता है, सहानुभूतिएकता का शत्रु है धर्म पर यह कुल्हाड़ा का काम करता है, धोखा, फरेब, चोरी, मक्कारी, डाकाज़नी यह कर्म इसी से होते हैं, इस को हर तरह से दबाना चाहिये, पर आज मन्दिर में जाओ. या तीर्थ पर; दफ्तरों में जाओ, राज्याधिकारियों के पास जाओ, इसी का दौर दौरा है, राज सेवकों—अधिकारियों की तो यह जान बन गई है, इसी ने ही सारे संसार में युद्ध करा कर अशान्ति राज्य स्थापन किया हुआ है पहले, सिर्फ वैश्य किसी कद्र लोभ करते थे, आज ब्राह्मण, क्षत्री, शूद्र एक जैसे हो गए, वैश्य देवता का तो कहना ही क्या, भारत और पाकिस्तान के बनने पर लोभ के अधिकारियों, ने गरीबों महुताजों दीन, दुखियों भूखों का जितना रक्त चूसा, यदि श्री कदवाई जी कन्ट्रोल को न तोड़ता, परमात्मा जाने यह लोभी लोग क्या कुछ कर गुजरते– वर्तमानयुग के राज्य अधिकारी मन्त्री मण्डल को देखो जहां से पार्टी की दावत हो, कहीं मकान की, या कारखाने की नींव रखनी हो तत्काल दौड़ते हैं। कहावत है:—

"जैसा अन्न वैसा मन"

क्या यह त्यागी तपस्वियों का सा बर्ताव कर रहे हैं जिस का यह खायेंगे उसी के आगे सिर झुकायेंगे वह पार्टी देने वाले फिर सैकड़ों हज़ारों का रक्त चूसेंगे । यह सब पाप का फल भोगेंगे ।

२. विवाह अवसर पर जो जहेज़ का रोग उत्पन्न हो गया है, इस लोभ के कारण कई लोभी लड़कों और उस के माता पिता ने लोभ पूर्ति न देख कर ब्याही देवियों को मार डाला और बीस २ तीस—वर्ष की कन्याएँ बैठी हुई हैं । जो आह पुकार कर रही हैं, वेद भगवान का लोभी के लिए क्या विधान है सुनोः—

ओ३म् ते कुष्ठिका सरमाये कूर्मों भ्यो आदधुः शाफान ।
उवध्यमस्य कीटे भयः श्ववर्ते भ्यो अधारयन ॥

ऋ० का० ९ सू० ४ मं० ६

भावार्थ—ऋषियों ने निश्चय किया है कि कुत्तियें-कुत्ते, कछुवे, कीट आदि जो हिंसक योनियां हैं वह ईश्वर नियम से पर पदार्थ हरने वाले प्राणियों के दुष कर्मों का फल हैं ।

वेद भगवान आदेश करता है कि जो पर पदार्थ को हरता है, वह हिंसक योनियों अर्थात कुत्तियें-कुत्ते कछुवे कीट पतंग आदि का जन्म पाता है ।

दृष्टान्त

एक सन्त महात्मा भ्रमण करते एक नगर में पहुँचे तो एक सदगृहस्थी जो श्रद्धालु था, सन्त महात्मा को देखा निकट पहुंचा' नत मस्तक हो नमस्कार किया, और अपने स्थान पर ले आ कर ठहराया, श्रद्धा प्रेम से सेवा की, रात्री को जब भोजन

आदि से निवृत्त हुए, तो सद्गृहस्थी सन्त महात्मा के निकट आ कर बैठा, पूछा महाराज ! आप जो भ्रमण करते फिरते हैं कुछ पैसा भी अपने पास रखते हैं। सन्त ने कहा, हां प्यारे ! कुछ न कुछ रखा हुआ है। गृहस्थी ने पूछा किस कदर रुपया पास है ? सन्त ने अपनी हाथ की लाठी उठा कर दिखलाई और कहा यह लाठी अन्दर से खोखली है, इस में एक सौ (अशरफी) पौंड रखा हुआ है। लाठी को खोलकर अशरफियां निकाल गिन कर दिखला दीं। और फिर बन्द कर दीं, गृहस्थी सन्त महात्मा के लिए बिस्तरा बिछा कर और उन्हें सुला कर चला गया, जब आधी रात्री का समय हुआ, तो चुपके से सन्त महात्मा के कमरे में आया महात्मा की लाठी उठा ले गया उसमें से अशर-फियां निकाल कर सौ पैसा भर दिया, और फिर लाठी वहीं छोड़ गया। प्रातः सन्त महात्मा जागे गृहस्थी को बुलाया उस से छुट्टी लेकर लोटा, लंगोटा, सोटा। इत्यादि उठा कर चल दिये। सन्त महात्मा हरिद्वार पहुँच गये, हलवाई को बुलाकर भण्डारा तैयार कराया, साधुओं, सन्त, महात्माओं को निमन्त्रित कर जिवाया। अब हलवाई भण्डारा के खर्च का बिल लाया तो सन्त महात्मा ने अन्दर जा कर लाठी को खोला, देखा इस में सौ अशरफी की बजाय सौ पैसा है तो लज्जा के मारे बाहर न आ कर अन्दर ही गले में रस्सी डाल कर फाँसी खा ली।

अब गृहस्थी की सुनिये:—सन्त महात्मा के चले जाने से गृहस्थी बहुत प्रसन्न हुआ, इस की सन्तान न थी, ईश्वर की कृपा से उस की स्त्री गर्भवती हो गई दस मास बाद पुत्र उत्पन्न हुआ, स्त्री पुरुष दोनों फूले नहीं समाते, अब पुत्र चलने फिरने के योग्य हो गया, तो दोनों स्त्री पुरुष पुत्र को लेकर हरिद्वार पहुंचे, पुत्र को नियत स्थान जहां पर रहते थे बिठा कर गंगा

स्नान करने चले गये। पीछे से अकस्मात एक आदमी आया, रोना पीटना आरम्भ कर दिया और कहने लगा, मुझे हलवाई जेल में डलवाता है, कहता है मुझे पन्द्रह सौ रुपया भण्डारा खर्च वाला देदो, यह आवाज सुनकर बालक उठा ट्रँक से एक सौ पौंड की थैली रखी थी उठा कर देदी, वह आदमी लेकर चलता बना और बालक के पेट में दर्द आरम्भ हो गया, बालक के माता पिता जब स्नान कर के आए, देखा तो बालक पेट दर्द से निढाल्ल और वेहाल पड़ा हुआ है तत्काल डाक्टरों, वैद्यों, को बुलाया गया, चिकित्सा की गई, सैकड़ों रुपये खर्च हो गये परन्तु बालक ने प्राण दे दिये, फिर ट्रंक को खोल कर देखा, तो सौ पौंड की पोटली भी नहीं है, अब खाली हाथों रोते पीटते घर लौटे न मूडी मिली न राम।

कवि लिखता है—

करदने खुदपेश में आयद फलकरा तोहमत आस्त।
हर चे अन्दाज़ीं ब्याने आस्या आरद बिरों।

अर्थात—ऐ मनुष्य अपना कर्म किया हुआ अपने पेश आता है तू कुदरत को दोष मत लगा चक्की में जैसा दाना डाला जाता है वैसा आटा पिसकर आता है।

जो जलाता है किसी को, खुद भी जल जाता है जरुर।
शमा भी जल जाते हैं, परवाना जल जाने के बाद॥
जो मिटाता है किसी को, खुद भी मिट जाता है वह।
मिट गया दारा, तो क्या बाकी सिकन्दर रह गया॥

पाठक गण—देखा कैसे भगवान पापी को आकाश पर चढ़ा कर नीचे गिराता है, यह बालक कौन था? जिसने सौ

पौंड उठाकर देदिये थे, यह वह सन्त महात्मा थे। उसने इस गृहस्थी के घर आकर जन्म लिया और वह इनको हरिद्वार ले गया, वह पौंड लेने वाला हलवाई था; साधु ने गृहस्थी के घर आकर जन्म लिया, ऋण चुका कर फिर चलता बना देखा-भगवान ने कैसे फलते-फूलते बगीचे को सुनसान बना दिया। और सुनिये :—

प्रत्यक्ष घटना

कलकत्ते से एक नवयुवक माता-पिता से लड़कर अठारह हज़ार रुपया उठा कर घर से निकल पड़ा, और रेलगाड़ी पर सवार हो गया। कुछ गुण्डों को कहीं से मालूम हो गया कि अमुक सेठ का लड़का अठारह हजार रुपया उठा कर भाग गया है तो वह उसके पीछे चल पड़े, शिकोह आबाद जैंक्शन स्टेशन पर गाड़ी तबदील करनी थी, नवयुवक उत्तर पड़ा, अब गुण्डों ने जा कर स्टेशन मास्टर से मेल जोड़ किया; एकान्त में ले जा कर उस लड़के को ओर संकेत करते हुए कहा, कि यह लड़का अठारह हजार रुपया ले कर घर से भाग निकला है, आप हमारी सहायता करें, हम इससे अठारह हज़ार रुपया ले लेंगे आप फिर जिस कदर रुपया चाहेंगें हम दें देगें, गुंडे यह कह एक तरफ हो गये। इस कदर रुपया का नाम सुनकर स्टेशन मास्टर लोभ वश हो उस युवक को कुली के द्वारा अपने पास बुलाया और उसे प्रेम, प्यार से बिठाया, और बड़ी सहानुभूति के साथ उस से यूँ कहा, कि बेटा! तुम इस गाड़ी पर न जाओ सायं काल का समय है, तुम अच्छे कुल वासी प्रतीत होते हो रात को हमारे यहां ठहर जाओ, हमारा घर तुम अपना घर ही समझो; फिर कल प्रातः की गाड़ी आप चले जाना, नवयुवक स्टेशन मास्टर के प्रेम, प्यार और सहानुभूति और सेवा भाव

को देख कर उस गाड़ी में न जा कर रुक गया स्टेशन मास्टर उसे अपने घर ले गया; बहुत मधुर और स्वादिष्ट भोजन तैय्यार करा कर खिलाए फिर सैकंड क्लास के वेटिंग रूम में पलंग पर बड़ा सुन्दर बिस्तरा बिछा दिया, और उसे सुला कर चला गया और गुंडों को बुला कर कह दिया, कि देखलो वह अमुक कमरा II क्लास के वेटिंग रूम में सोया हुआ है अब मैं घर जाता हूं, तुम अपना काम करलो, पर अभी जल्दी नहीं, बारह बजे आधी रात के बाद करना क्योंकि उस समय स्टेशन पर चुप चाप होगी, इतना कह कर स्टेशन मास्टर घर चला गया दैवयोग से एक कुली को सारा भेद ज्ञात हो गया, और सब क्रिया देखता रहा। जब स्टेशन मास्टर अपने घर चला गया तो कुली ने वेटिंग रूम में प्रवेश कर नवयुवक को जगाया, और कहा, उठो जल्दी से तुम मेरे घर में चलकर आराम करो, देर मत करो, नवयुवक ने कहा क्यों ? मैं अच्छा लेटा हुआ हूं, कुली ने कहा अपना भला चाहता है तो फौरन उठ चल; कल तुम्हें बात बतलाऊंगा नवयुवक तत्काल उठा कुली के यहां चला गया, कुली ने घर जा कर उसे सुलाया और कहा अन्दर से दरवाजा बन्द कर दो कुली ने बाहर से दरवाजा को ताला लगा कर पहले पुलिस को सूचना दी, फिर ड्यूटी पर चला गया। दैवयोग से स्टेशन मास्टर का लड़का सिनेमा देखने गया हुआ था रात्री के ग्यारह बजे जब लौट कर स्टेशन पर पहुंचा, देखा पिता जी ड्यूटी पर नहीं है, तो कुली से पूछा, कि स्टेशन मास्टर साहिब कहां है ? कुली ने कहा आज रात की ड्यूटी की वह छुट्टी ले गये हैं, घर में होंगे अब लड़का डर के मारे घर न गया कि पिता जी बुरा मानेंगे कि सिनेमा देखने क्यों गया था, तो वह घर न जा कर वेटिंग रूम में चला गया, क्या देखा, पलंग पर हमार

ही घर का बिस्तर बिछा है, पर सोने वाला कोई दृष्टि गोचर नहीं हुआ, तो उसी पलंग पर लेट कर चादर ओढ़ली, और नींद में मस्त मग्न हो गया।

बारह बजे रात के बाद गुण्डे चुपचाप वेटिंग रूम में पहुँच गए, सोये हुए की गर्दन पर छुरी फेर दी फिर तलाशी ली, पर जेब में से कुछ न निकला, तो अति दुःखी हुए अब जान बचाने के लिये लाश को एक बोरी में बन्द किया उठाकर रेल की पटरी पर डालने को ही थे तो पुलिस वाले जो ताक में थे देख लिया उन्हें तत्काल पकड़ लिया।

अब जब प्रातः हुई तो स्टेशन मास्टर को बुलाया गया। बोरी को खोला तो स्टेशन मास्टर के लड़के की लाश थी, अब पुलिस ने कुली को बुलाया और नवयुवक को बुलाया सारा वृत्तान्त सुना, लिखा, फिर कलकत्ते में नवयुवक के पिता को टेलीग्राम किया गया, वह पहुंच गया, सारा वृत्तान्त सुना, उसका एक ही यही बेटा था, कुली की सहानुभूति को देख कर प्रेम के आंसू बह निकले, अठारह हज़ार रुपया जो नवयुवक के पास था और साथ अपने पास जिस कदर रुपया था सभी कुली के चरणों में रख कर धन्यवाद करते हुए कर जोड़ प्रार्थना की कि आप नौकरी छोड़ दो मेरे साथ चलो, एक सौ रुपया मासिक वेतन दूँगा पर काम कुछ भी न करना।

प्यारे देखो भगवान का न्याय का कांटा कितना बलवान है—ऐ मनुष्य सम्भल जा, वह बड़ा जबरदस्त है।

जिस को राखे साईयां-मार न सके कोय।
बाल न बांका कर सके-चाहे जग वी बैरी होय॥

संत कबीर ने क्या सुन्दर कहा है :—

कुछ देर नहीं अंधेर नहीं, इन्साफ और अदल परस्ती है।
इस हाथ करे उस हाथ मिले, यह सौदा नकदबनकदी है ॥

कवि लिखता है—

क्या क्या फ़ेब दे के सताती है जिंदगी।
हर दम हंसा हंसा के रुलाती है जिंदगी ॥
बेज़ार कैसे कोई भला इस से हो सके।
इन्सान को सौ तरह से लुभाती है जिन्दगी ॥
रूठे जो एक बार उस से तो लाख बार।
दे कर फ़ेब उस को मनाती है जिन्दगी ॥
आए जो कोई पास तो कहती है दूर हो।
और दूर हो तो पास बुलाती है जिन्दगी ॥
हंसाती किसी को पार कर रुलाती है इश्क खून।
रोए कोई तो उस को हंसाती है जिन्दगी ॥
उमीदवार दिल हो तो यह तोड़ती है आस।
मायूस हो तो आस बन्धाती है जिन्दगी ॥*

यह नहीं—बल्कि अपनी तरफ से जो बहुत होशियार है जो सभा सोसायटियों को धोखा देते हैं जो दूसरों की आंखों में धूल डालते हैं परिणाम उनका भी यह कि झोली खाली रखती है जो इच्छाओं के आधीन होकर कर्म करता है तो इच्छाएँ उस को **मिलया मेट कर** देती हैं। कवि लिखता है—

* जिन्दगी—दुनया—दौलत।

गर कोई हुश्यार हो तो करती है यूं शिकार ।
हिर्सो हवस का जाल बिछाती है जिन्दगी ॥
इक उम्र ढूंढने पर जिनकी मिले न छाओं ।
कुछ ऐसे सब्ज बाग दिखाती है जिन्दगी ॥
फिर करके गम से जान की बुनयाद खोखली ।
घुन की तरह से जिस्म का खाती है जिन्दगी ॥
पूरे किसी के करती है लाखों तो बेशुमार ।
अरमान खाक में भी मिलाती है जिन्दगी ॥
अहले हवस को तख्ते जवाहिर निगार पर ।
कुछ दिन बिठा के ऐश कराती है जिन्दगी ॥
फिर बस घसीट के उन्हें कशां कशां ।
फर्शे जमीन पै लाकर सुलाती है जिन्दगी ॥
मक्कार हीला साज़ो सैयह कारो खुद गरज ।
शैतान आदमी को बनाती है जिन्दगी ॥
इन्सान अजब है तिफलके नादान जैसे जलील ।
जिस राह चाहती है चलाती है जिन्दगी ॥

नोट—जिन्दगी के अर्थ दुनिया दौलत जिसको माया कहते हैं माया जब मल मल जैसे कोमल कपड़े को लग जाता है तो उसे अकड़ा देता है अकड़ा हुआ मुँह के बल ऐसा गिरता है कि उसे फिर मां याद आ जाती है ।

सन्तों की वाणी

नारायण सत्संग कर, सीख भजन की रीत ।
काम क्रोध मद लोभ में, गई अखिल आयु बीत ॥

कोटी कर्म लगे रहैं, इक क्रोध की लार ।
किया कराया गया जब आया अहंकार ॥

काम बिगाड़े भक्ति को; ज्ञान बिगाड़े क्रोध ।
लोभ बैराग बिगाड़ दे, मोह बिगाड़े बोद्ध ॥

काम क्रोध लोभ आदि मद, प्रबल मोह की धार ।
तिन में अति दारुण दुखद माया रूपी नार ॥

छोटी मोटी कामनी, सब ही विष की बेल ।
बैरी मारे दाव से, वे मारे हँस खेल ॥

कामी' क्रोधी, लालची, इन से भक्ति न होय ।
भक्ति करे कोई सूरमा, जात वर्ण कुल खोय ॥

जो प्राणी ममता तजे, लोभ-मोह-अहङ्कार ।
कहे नानक अपनों तरे, और न लेत उबार ॥

नहीं ठहरे मन कभी, जब तक जग में राग ।
जग में होवे वैराग, तो ईश्वर में अनुराग ॥

———

ईश्वर में अनुराग होवे, मन निश्चल ऐसा ।
ज्यों सागर गम्भीर अचल है पर्वत जैसा ॥
भोला तज दे भोग, योग कर ईश्वर माहीं ।
यह ही पथ कल्याण मार्ग, दूजा है नाहीं ॥
मनुष्य जन्म दुर्लभ है, दुर्लभ मनुष्य शरीर ।
भक्ति भाव हृदय में भरे, सो नर धीर गम्भीर ।
कबीर-कबीर तुम क्या करो, शोधो मनुष्य शरीर ।
पांचों को जो वश करे, वही दास कबीर ॥

———

जिसने ईश्वर के दया और प्रेम के तत्त्व रहस्य को जान लिया है उसके शान्ति और आनन्द की सीमा नहीं रही ।

ओ३म् शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

———

❀ ओ३म् ❀

ओ३म् अतो विश्वान्यद् भूता चिकित्वां अभि पश्यति कृतानि या च कर्त्वा ऋ० १. २५. ११ ॥

शब्दार्थः—ज्ञानी पुरुष जो कि जा चुकी हैं और जो की जायेंगी। उन सब अद्भुत बातों को इस परमेश्वर से होई सब तरफ देखता है—

इस संसार में हम अद्भुत आश्चर्य चकित कर देने वाली घटनायें होते हुए देखा करते हैं। इनका करने वाला कौन है ? वैसे तो प्रतिदिन होने वाली बातों को भी यदि हम ध्यान से देखें तो हमको उन में बड़ी अद्भुतता दीखेंगी ये अन्धकार और प्रकाश कितनी अद्भुत वस्तु हैं, जिन का परिवर्तन हम नित्य सायं प्रातः देखते हैं। नन्हे से बीज से बड़ा भारी वृक्ष बन जाता, अभी चलते, फिरते, हंसते, खेलते, देखते मनुष्य का एक दम ऐसा हो जाना कि फिर वह कभी न जग सकेगा। जीव से जीव उत्पन्न हो जाना, यह सब भी वास्तव में कितनी अद्भुत बातें हैं। परन्तु जब पृथ्वी आग बरसाने लगती है और ज्वाला मुखी फटने से सैकड़ों शहर बरबाद हो जाते हैं भूकम्प आते है, बड़े २ साम्राज्य देखते देखते मिट जाते हैं, थोड़े ही दिनों में एक मनुष्य सितारे की तरह ऊँचा, यशस्वी हो जाता है या राजा रंक हो जाता है, तो इन में अद्भुतता सभी अनुभव करते हैं। विज्ञान के आजकल के अद्भुत चमत्कारों को देखो, सिद्ध, साधु, सन्तों द्वारा हुई चकित कर देने वाली बातों को देखो। यह सब संसार के एक से एक बढ़ के अद्भुत हैं। इन सब अद्भुतो के करने वाला कौन है ? हम लोग समझते हैं, कि इन के करने वाला मनुष्य है। मनुष्य की वैज्ञानिक शक्ति, या संघ शक्ति यह कुछ भी नहीं,

केवल प्रकृति का खेल है पर जो चिकित्वान (जानने वाले) हैं उन्हे तो सब तरफ इन अद्भुतों का करने वाला वही परमेश्वर दिखाई देता है। उसी से सब संसार के आश्चर्य निकलते देखते हैं, इन सब विविध आश्चर्यों के देखते हुए उन की दृष्टि सदा उस एक इन्द्र परमेश्वर पर रहती हैं। प्रभु तो गूंगे को वाचाल करने वाले, और लंगड़ों को भी पहाड़ लंघाने वाले हैं ही। अन्धे को आँखें देने वाले, और संसार में जो अद्भुत बातें हो चुकी हों, वह सब प्रभु की ही की हुई थीं, कल जो अद्भुत घटनाएँ होने वाली हैं, कोई तखता पलटने वाला है, वह भी उस प्रभु की सहज लीला से ही होने वाला है। प्रभु की अपार लीला देखने वाले ज्ञानी इसमें कुछ आश्चर्य नहीं करते,वह अद्भुत से अद्भुत घटना में भी कारण कार्य भाव को देखते हैं।

अतः ऐ मनुष्य ! संसार के इन आश्चर्यों को देख कर चकित होना छोड़ दे, किन्तु इन को देख कर इन के कर्त्ता को पहचानो। उस नट को पहचानो; जो कि संसार को यह अद्भुत नाच नचा रहा है।

प्रभु की अद्भुत रचनाओं, क्रियाओं, लीलाओं का वर्णन करना मनुष्य की बुद्धि से दूर है, मनुष्य को स्वयं अपना इतना बोध नहीं, कि पल के पश्चात मेरा समय कैसे गुजरेगा, उस की रचना में मनुष्य की अकल को दखल नहीं हो सकता है। सुनिए—मेरे एक प्रेमी ने हजाम को बुलाया और सिर की हजामत कराइ, सेवक से कहा जल की बाल्टी और साबुन, तेल लाओ, हजाम चला गया जब जल की बाल्टी साबुन तेल सेवक लाया, तो क्या देखा, लाला जी कुर्सी पर सिर धरे सदा के लिए मुक्त हैं।

२. मेरे दादा जी हुक्का पिया करते थे, बेटा हुक्का भर कर लाया सामने रखा, दादा जी ने हुक्का की नड़ी को हाथ में पकड़ा; बस हाथ नड़ी पर धरा का धरा रहा, देखा तो बुत व दीवार बैठे हैं, श्वास देवता काफूर। ऐसी अनेक घटनाएँ देखी जाती हैं।

३. एक सेठ चक्षु रहित था, अपनी सेवा के लिए सेवक रखा हुआ था, सेवक ने लोभ वश हो कर एक सांप पकड़ा, और उसे मार कर उस को काट काट कर देगची में डाल कर आग पर चढ़ाया। ताकि यह सेठ को खिलाऊँगा, सेठ मर जावेगा— इसी का खजाना लेकर रफू चक्कर हो जाऊँगा। अब भोजन करने का समय आ गया, सेठ ने सेवक से कहा, अरे खाना लाओ, सेवक ने कहा अभी गोश्त पका नहीं है; पक्क जावे तो देता हूं, थोड़ी २ देर बाद सेठ ने कहा आज क्यों देर हो रही है ? सेवक ने कहा बस पांच मिन्ट में तैयार हो जाता है। चूंकि सांप के माँस में अभी पकने में देर थी; इधर सेठ बार बार खाना माँगता था, तो सेवक ने कहा, अभी मैं शौच हो कर आता हूँ इतने में गोशत भी तैयार हो जाएगा, फिर रोटी पका कर दूँगा, सेवक समय टालने के लिए बाहर चला गया, अब सेठ को बहुत भूख लगी थी, दिल में सोचा देखूँ तो सही गोशत पकने में आज इतनी देर क्यों हो रही है, उठा देगची के निकट पहुंच गया, देगची से ज्यों ही ढकना उतारा, तो देगची से भाप जो निकली सेठ की आंखों पर जा पड़ी, भाप के आंखों पर पड़ने से सेठ के नेत्र खुल गये, देखा देगची में सांप पक रहा है। तो सिर भूमि पर धर प्रेम के आंसू बहाता हुआ भगवान का धन्यवाद गा रहा है, और कह रहा है। आ हा ! प्रभु तू धन्य है, तेरे प्रति सच कहा गया है—

राई को कोह कर दे, खाली को दम में भर दे।
इशारा तेरा काफी है, मिटाने में बनाने में ॥

———

रचना उसी की प्यारे जग में रची हुई है।
इक धूम जिस के देन की हरसू मची हुई है ॥
आंखों में जोत उसकी, मन में उसी की माया।
सब रूप हैं उसी के, जिस का है जग रचाया ॥
जल में झलक उसी की, पर्वत में ठाठ उसका।
चारों तरफ वह आली, परमात्मा है छाया ॥
आकाशपर वह नीला, और सूर्यमें है वह पीला।
धरती पै और लीला क्या रंग है बनाया ॥

कवि लिखता है कि यदि तू इसको देखना चाहता है तो उसको यूं देख कि वह कहां है।

तिन्हा न उसे अपने दिले तंग में पहचान।
हर बाग में हर दश्त में, हर संग में पहचान ॥
बे रंग-बारंग में, बैरंग में पहचान।
हर राह में, हर साथ में, हर संग में पहचान ॥
नित रोम में, और हिन्द में, अफरंग में पहचान।
मंजल में मकामात में फर्संग में पहचान ॥
हर अज़म इरादे में हर अहंग में पहचान।
हर धूम में, हर सुलह में, हर जंग में पहचान ॥

हर आन में, हर बात में, हर ढंग में पहचान ।
आशिक है तो, दिलवर को, हरएक रंग में पहचान ॥

इतनी बातें सुनते हुए और जानते हुए कि वह सर्व व्यापी, सर्व अन्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्व परिपूर्ण, सर्व द्रष्टा, सर्व के हृदयों में विराजमान हैं । वह क्षण क्षण पल-पल में हमें पाप और बुरे कर्मों को करने पर तत्काल भय भीत करके लज्जित करता और सन्मार्ग दिखलाता है, पर हम देखते हुये नहीं सम्भलते—सुनते हुए नहीं टिकाते, कहते हुए भी आचरण में नहीं लाते, परिणाम यह होता है, जब हमारे किये कर्मों का वह कर्म फल दात हमें फल देता है, तो फिर उस की सत्ता शक्ति का अनुभव करते और सिर झुका कर क्षमा याचना करते हैं अखंड भारत वर्ष के समय किस प्रकार से पूर्वी पंजाब में अपने २ स्थानों पर हम रहते थे, कितना प्रेम सहानुभूति थी । जिस समय अखंड भारत से पाकिस्तान पृथक हो गया, तो दोनों तरफ के नर नारी अपने २ स्थानों को छोड़ कर आये, कोई नहीं जानता था कि ऐसा खेल खिलाड़ी का होगा, । महात्मा गाँधी, पण्डित जवाहर लाल नेहरू, अखबारी दुनिया, सभी भारत के नेता पुकार पुकार कर सन्देश और उत्साह देते थे, कि अपने अपने शहरों स्थानो पर आराम से बैठे रहो । क्या कोई कह सकता है कि मुझे पूर्व ज्ञान था कि ऐसा परिवर्तन होगा, बड़े बड़े ज्योतिषि पंजाब भर में जो विख्यात थे, जो भूत और भविष्य की बातों का बोध लोगों को देकर, धन कमाते और प्रभु से उन्हें विमुख करते थे । कभी इन भविष्य के ठेकेदारों ने बतलाया था कि भारत का हाल ऐसा होगा । किन्तु वह अपने भविष्य का ज्ञान तक प्राप्त न कर सके, जो कि वहां पर

हराम मौत मारे गये, जिन की सन्तान भी उनका मृतक संस्कार तक भी न कर सकी। अरे जो वहां लाखों करोड़ों के मालिक थे, यहाँ आ कर कंगाल हो गये और छाबड़ी बेचते फिरते हैं, और जो कंगाल थे, अपने पुरुषार्थ बल से धन सम्पति कमा कर सुखी हो रहे हैं। और बड़े २ महलों कोठियों और बिजली के पंखों के नीचे आराम करने वाले आज सर्दी-गर्मी में भेड़ बकरियों की तरह मामूली सी झोंपड़ियों में रह कर अपना समय व्यतीत कर रहे हैं। कहां तक वर्णन करूं बे साखता मुंह से निकलता है—वह बड़ा जबरदस्त है।

तेरी महिमा तू ही जाने
और न जाने कोई।

और देखो। खेल उस खिलाड़ी का, जब पाकिस्तान भारत से पृथक हो गया तो पंजाब की असेम्बली बनी, तो डाक्टर भार्गव को मुख्य मन्त्री बनाया गया-कुछ काल बीतने पर भार्गव को हटा दिया गया। फिर सच्चर महोदय मुख्य मन्त्री बन गए। मन्त्री अधिकार लेने से पूर्व हवन यज्ञ किया गया, नाना प्रकार की प्रतिज्ञाएँ की। लोगों को विश्वास दिलाया, मैं यह करूंगा, वह करूंगा, और मुख्य मन्त्री पद का अधिकार ले लिया। अभी छः मास नहीं बीतें थे, तो उन्हें उतार कर भार्गव को फिर मुख्य मन्त्री का शासन दे दिया गया। अब जरा सोचो जब भार्गव को पहले पहल मुख्य मंत्री बनाया गया था। तो क्या उसे यह ज्ञान था कि मैं थोड़े समय के पश्चात् मुख्य मन्त्री अधिकार से उतारा जाऊंगा, क्या जब सच्चर मुख्य मन्त्री गद्दी पर बैठे, तो क्या उनको यह ज्ञान था कि मैं छः मास के पश्चात् मुख्य मंत्री के पद से हटाया जाऊंगा। उत्तर साफ होगा-कि

हरगिज़ नहीं। यह मैदान में खेल खिलाने वाला कौन था ? पर किसी का ज़ुर जोर चला। अच्छा आगे चलिये। भार्गव जी जब दो बारा मुख्य मंत्री की गद्दी पर विराजे, तो फूले नहीं समाते थे, और कहते थे, किस प्रकार से सच्चर को हटा कर फिर गद्दी सम्भाल ली है। खूब उछलने लगे, पर पचान सका। फिर खेल खिलाड़ी का देखो, अभी छः मास शेष अधिकार निभाने के रहते थे, तो गवर्नरी राज्य हो गया, तो आप भी गये, और साथ साथी भी। यह खेल खिलाड़ी का संसार देखता रहा, जो कल पंजाब भर की सारी जनता भार्गव की मान और इज्जत करती थी—और यह ऊपर देखते थे जनता इनके चरणों को चूमती थी, अब जनता इन के सर को देखती है और यह नीचे को देखते हैं, यह क्यों ? जब सर पर चोट लगती है तो आंख झुकती है, और मां याद आती है और यह न सोचा कि यह चक्कर चलाने वाला. कैसा ज़बर दस्त है ! आगे चलो ! और देखो, अब दोबारा इलकशन हुआ, हज़ारों रुपये खर्च हुए पार्टियां बनाई गई, एक दूसरे पर कीचड़ उछाली गई, पर परिणाम क्या हुआ, जो कल मुख्य मन्त्री थे आज कौंसल के मैम्बर तक भी न बन सके, इसका कारण-इस का कारण यह कि--भार्गव जीता था पटेल के आश्रय-पटेल मर गया—तो भार्गव जीते जी……अब सच्चर महोदय मुख्य मन्त्री है, पर यह किसके आसरे पर हैं, पंडित जवाहर लाल नहरु के आसरे। यदि पंडित जवाहर लालजी प्रधान मन्त्री का पद छोड़ दें, तो कल सच्चर साहिब भी अपने को मुक्त समझें, क्यों। जब आश्रय दाता न रहा तो आश्रित की रक्षा कौन करे।

पर अब सोचो ! महात्मा गांधी किसके आश्रय थे जिस की भारतवर्ष ही नहीं किन्तु सारे संसार की जनता, ने उसकी

महात्मा शब्द से उच्चारण किया, क्या कभी किसी के द्वार पर उसने आकर माथा रगड़ कर, हाथ जोड़ कर याचना कि थी कि मुझे महात्मा बनाओ या मुझे प्रधान बनाओ। वह क्या था, कांग्रेस का कौड़ी का भी मेम्बर तक नहीं था पर कांग्रेस गांधी और गांधी कांग्रेस थी—सत्य अहिंसा का पुजारी, त्यागी, तपस्वी, प्रभु का भक्त, भारत माता का सच्चा पुजारी, परमात्मा का अटल विश्वासी वह अमृ त वेला जागता स्वयम् भगवत पूजन करता, जनता को उसका पुजारी बनाता। मुझे मेरे गुरु देव पूज्य श्री स्वामी कृष्णा नन्द जी महाराज ने बतलाया था कि हम लाहौर में थे, हमें ज्ञात हुआ कि कल डी-ए-वी कालिज के ग्रौंड में प्रातः पांच बजे महात्मा गांधी जी की प्राथना होगी, तो हम तीन बजे उठ कर गये, क्या देखा, दो घंटा पहले ही से ग्रौंड जनता से भरा हुआ है—

मैं देख कर आश्चर्य हुआ। गुरु नानक देव ने क्या सुन्दर कहा है—

"जे तू उसदा हो रहे—सब जग तेरा हो"

परन्तु आज उन के नाम लेवाओं को देखो, जो बापू बापू पुकारते हैं और कहते है कांग्रेस के नेता महात्मा गाँधी ने अहिंसा-सत्य के आश्रे भारत को स्वतन्त्र कराया है, पर यह कितने अहिंसा सत्य के पुजारी हैं।

अभी कुछ दिन बीते मैं सात बजे सायं काल शिमला रिज पर से गुजरा, क्या देखा कि नीचे इर्द-गिर्द बैंचे पड़ी हुई हैं जनता बैठी खड़ी हुई है। और यह कांग्रेस (महात्मा गाँधी की टोपी वाले) छोटे बड़े सभी ऊपर स्टेज पर कुर्सीयों पर बैठे हुए हैं जो गांधी टोपी पहने, लम्बा कोट चूड़ी दार पजामा पहने वह इन का भाई है, बाकी इनमें कुछ दृष्टिगोचर होते हैं, और

तीन राज्यअधिकारी अपनी अपनी तकरीरें करने वाले थे। तकरीरें क्या थीं—हम ने यह किया, हमने वह किया, इत्यदि—

"मन तुरा हाजी बगोयम-तू मरा मुल्लां बिगो"

एक दूसरे की प्रशन्सा करते हुए अन्त में ताली बजा कर कारों में सवार होकर कोठीयों में जा घुसे, इन राज्य अधिकारीयों को वह समय भूल गया है कि जब मैम्बरी के लिए दर दर पर धक्के खाते, लोगों के पाँव चूमते थे उस वक्त तुम्हारी क्या हालत थी, क्या क्या प्रतिज्ञायें की थीं, क्या क्या वचन किये थे, याद है कहा था, कि नहीं हम सेवक बन कर रहेंगे।

अब देखो, पंजाब के सात मन्त्री (वजीर) हैं इनका आपस में मिलाप नहीं, जिन्होंने पंजाब भर की जनता को एकता की लड़ी में पिरोने का ठेका लिया हुआ है, यदि यह एक के पुजारी होते, तो इनमें एकता न होती, और फिर पंजाब में राम राज्य और शान्ति न होती, पर स्वार्थी लोगों में एकता कहां, इन को भगवान् दृष्टि गोचर नहीं होता, यह थोड़ा सा काम करते हैं ललकार-ललकार कर लोगों को सुनाते हैं, हमने यह किया, वह किया, अरे अहंकारियो। जरा उस करता को देखो, जिसने तुम्हें यह सुन्दर शरीर, बुद्धि स्वास्थ्य और यह मान प्रतिष्ठा दी है। जरा उस अन्धे से पूछो, जो लाखों करोड़ों की सम्पति का मालिक है जिनके अनेकों नौकर-चाकर सेवा करने वाले हैं, क्या तू चाहता है कि तुम्हारी आंखों में प्रकाश आ जाय-तो तत्काल वह यह कहेगा, कि मेरी लाखों की सम्पति लेलो, पर आखों में प्रकाश लादो। अब सोचों इस सम्पति के बदले आंखों में प्रकाश कहीं से मिल सकता है यह असूल्य ज्योति कहां से और किसने प्रदान की है। यह अधिकारी स्टेजों पर

तो चढ़कर लोगों को अपनी कृतघन्ता जितलाते और अपनी महिमा गाते हैं अपने मुँह मिया मिट्ठू बनते हैं। पर इन से पूछो, कभी किसी रात्री को फ़कीराना लिबास पहन कर गरीबों, मुहताज, अनाथों, विधवाओं की झोपड़ियों में गये। जिनके वोटों पर तुम राज्य सिहासन पर बैठे हो। जो वह एक छोटी-छोटी कच्ची कोठड़ियों में भेड़बकरियों के रेवड़ की तरह पड़े हुए तुम्हें आहें दे रहे हैं और तुम लाखों के महलों में रहते हो, और कभी अमृत बेला में जागकर भगवान से भी प्रेम दो घड़ी किया; किसी को भगवान् का पुजारी बनाया, या उसका मार्ग बतलाया याद रखो, वह गाफ़िल नहीं है, तेरे और मेरे अन्दर और निकट के किये कर्मों को देख रहा है, तुम संसार के प्राणी को धोका दे सकते हो, उसको नहीं दे सकते, जब वह पकड़ता है तो अपने मुँख से स्वयम कहना पड़ता है, कि वास्तव में मैं पापी हूँ, बच्चे बस अब सम्भल जाओ और ऐसा कम करो कि जो दुनियां तुम्हारी महिमा गाये न कि तुम अपनी महिमा आप गाओं, भगवान् का यन्त्र बन कर काम करो, स्वयम करता हुआ भी न करते की तरह बन कर रहो—

सन्त कबीर ने कहा है।

कबिरा गर्व न कीजिए, रंक न हंसे कोय।
अजे बी नाव समुद में, क्या जाने क्या होय ॥

आओ-अन्त में हम सब मिलकर प्रभु का गीत गाते हुए नम्रहोकर प्रार्थना करें। ताके बीती सो बीती रही-सही बन जावे।

———

"हे प्रभु"

निराकर आनन्दमय, सुख स्वरूप निर्लेप,
मन की जैसी भावना, वैसी ही फलद्त।
किस संग कीजिए दोस्ती, सब जग चलने हार,
निश्चल केवल है प्रभु, करता सबसे प्यार।
आज्ञाकारी प्रभु के, रहते प्रभु के संग,
तन मन से सेवा करे, लगे न दूजा रंग।
कबीर सब जग निर्धना, धन्वन्ता न कोय,
धन्वन्ता सो जानिए, प्रभु नाम धन होय॥
प्रभु का जो स्मर्ण करे, सांस सांस दिन रात,
दूर उसी का होत हैं, पाप मिलन दुःख गात।
जिभा तो तबही भली, जपे ओ३म् का नाम,
नहीं तो काट निकालिये, मुख में भलो न चाम
प्रभु का स्मर्ण नित करो, जिस विद्ध समरा जाय,
कभी तो दीन दयाल जी, बोलेंगे मुस्काय॥
ईश नाम की औषधि, भली रीत से खाए,
अंग पीड़ित व्यापत नहीं, महा रोग मिट जाए
ईश्वर नाम अनमोल है, दामो बिना बिकाए,
तुलसी अचरज देखिये, कोई गाहक न आए॥
मुर्दे को प्रभु देत हैं, लकड़ी, कपड़ा, आग,
जीवित चिन्ता जो करे, ताके बड़े अभाग।
ईश बिना किस काम के, छप्पन भोग विलास,
क्या इन्द्र आसन बैठना, क्या वैकुण्ठ निवास।
साखी जगत की कौन है, जाको दुख कुछ नाहीं,
हरि ध्यान में मग्न जो, सुखी वही जग माहीं।

जप, तप, तीर्थ, व्रत, घना, योग यज शुभ काम
यह इनमें ही बसत हैं, जा के हृदय भगवान ॥
तुम प्रभु दीन दयाल जो, आए पड़ा हूँ द्वार,
जैसा कैसा हूँ हरि, कीजिए यह न विचार।
तेरा लग्न मन में रहे, जब लग घट में प्राण,
तेरा ही स्मर्ण करो, तेरी ही हो ध्यान ॥
तुझ से यह वर मांगता, मैं जाऊं सब भूल।
नित तेरी धुन में रहूं, है जीवन का मूल ॥

———